* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

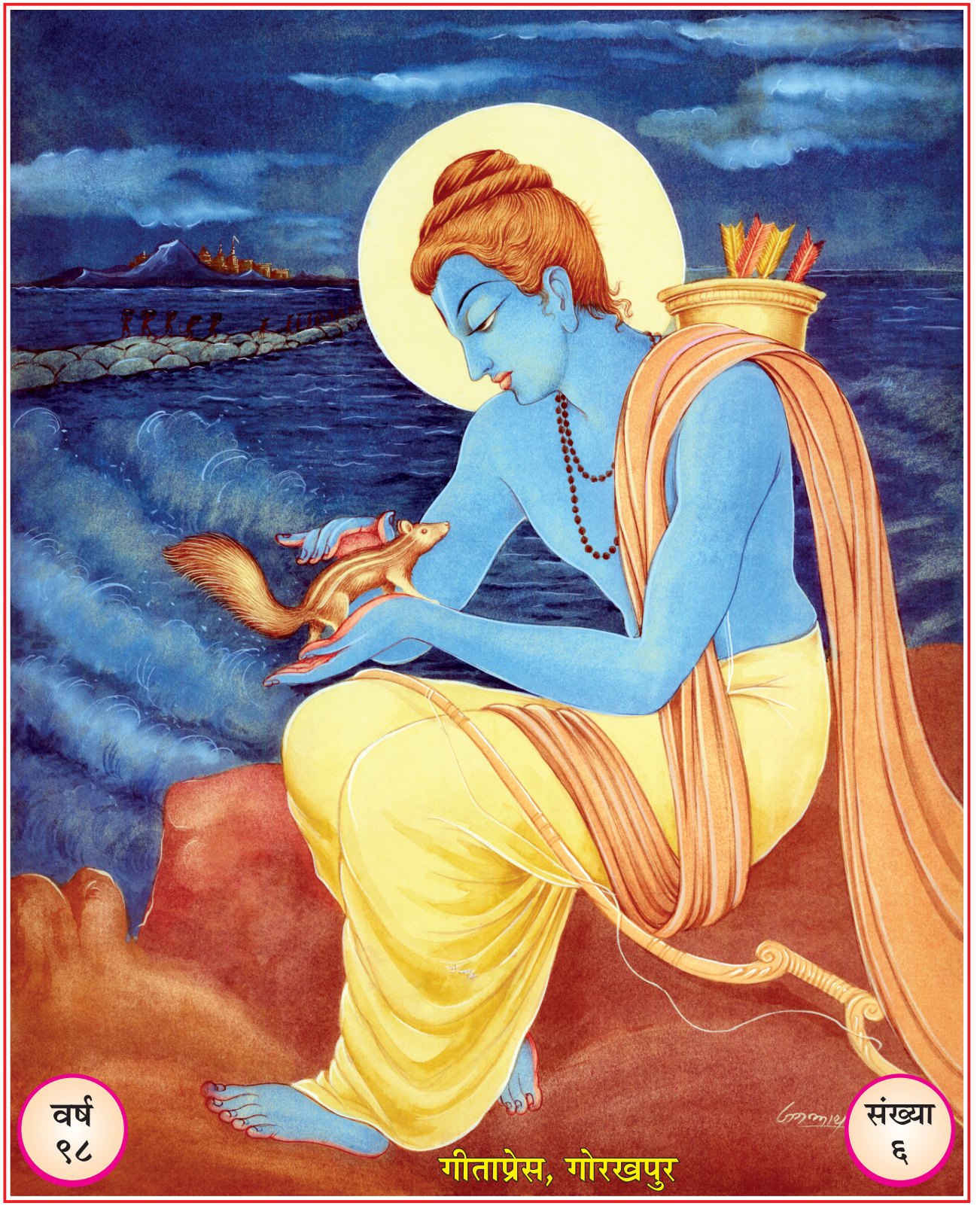

वर्ष ९८

संख्या ६

गीताप्रेस, गोरखपुर

गिलहरीपर भगवान् रामकी कृपा

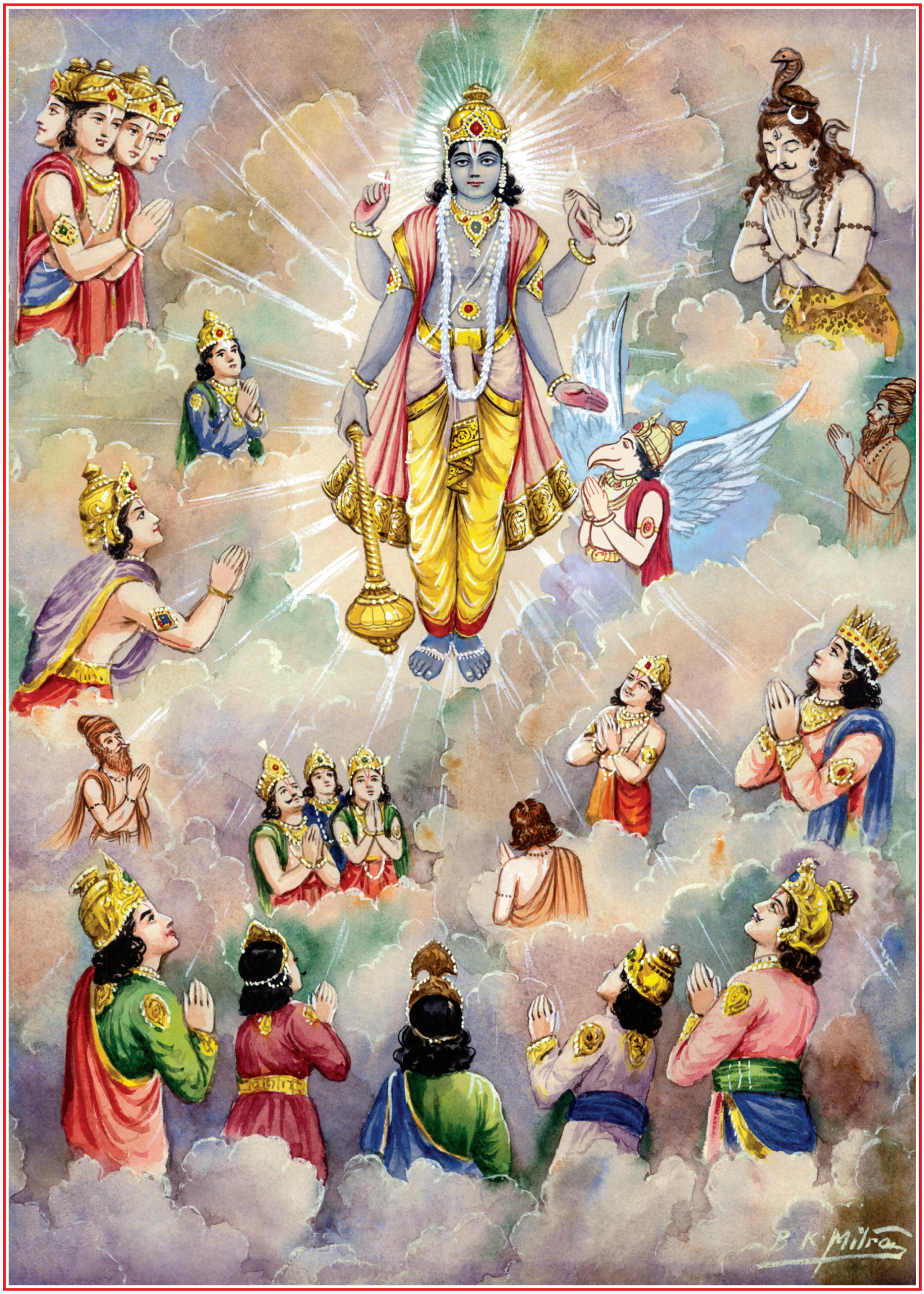

ब्रह्मादि देवोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

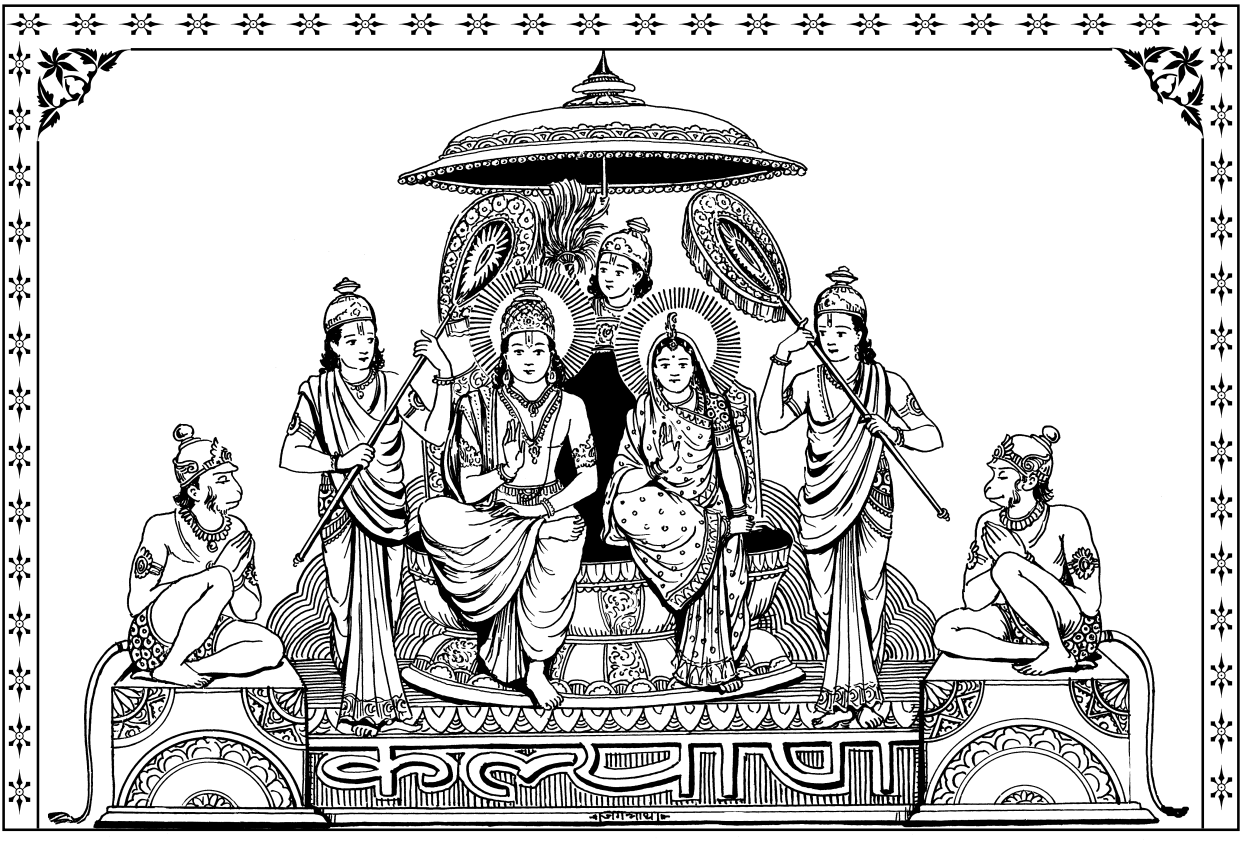

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम् ॥

वर्ष ९८ | गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०८१, श्रीकृष्ण-सं० ५२५०, जून २०२४ ई० | संख्या ६
पूर्ण संख्या ११७१

ब्रह्मादि देवोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता । गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता ॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई । जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥
जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंदा । अबिगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगत मोह मुनिबृंदा । निसि बासर ध्यावहिं गुनगन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ॥
जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा । सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा । मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा ॥
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहिं जाना । जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुंदर गुनमंदिर सुखपुंजा । मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ॥

जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह ।
गगनगिरा गंभीर भइ हरनि सोक संदेह ॥

[श्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०८१, श्रीकृष्ण-सं० ५२५०, जून २०२४ ई०, वर्ष ९८—अंक ६

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- ब्रह्मादि देवोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- गिलहरीपर प्रभु रामकी कृपा **[आवरणचित्र-परिचय]**	७
५- स्वधर्मपालनका महत्त्व (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- मनुष्यका गर्व व्यर्थ है **[बोधकथा]**	९
७- शरणागतिकी पूर्णावस्था (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	१०
८- धनका यथार्थ **[बोधकथा]** (पं० श्रीशंकरलालजी तिवारी)	११
९- भगवन्नामके मूल्यपर एक दृष्टान्त (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१२
१०- लगन हो तो सफलता निश्चित है **[बोधकथा]**	१३
११- बालक भगवत्स्वरूप है (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१४
१२- भगवान् हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१६
१३- श्रीरामकथा—अनन्त और सदा नवीन (श्रीसचिनजी नाईक)	१८
१४- त्यागसे शान्ति तथा कल्याण-प्राप्ति (दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती)	१९
१५- सूर्यविद्या (श्रीरामजी शास्त्री)	२२

विषय	पृष्ठ-संख्या
१६- सत्संग-सुधा (श्रीकेशोरामजी अग्रवाल)	२५
१७- कच्चा बर्तन **[बोधकथा]**	२६
१८- पिताकी सीख **[मारवाड़ी लोककथा]** [प्रेषक-श्रीजेठमलजी वर्मा 'नागी']	२७
१९- श्रीकृष्णकी गुरुदक्षिणाके दो प्रसंग (श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)	२८
२०- संसारमें कैसे रहें ? (डॉ० श्रीसुनील कुमारजी सारस्वत)	३१
२१- क्यों जागूँ ? **[बोधकथा]** (श्रीपुरुषोत्तम कुमारजी परिहार)	३४
२२- श्रीविप्रनारायण (भक्तपदरेणु) **[सन्त-चरित]**	३५
२३- अहंकार **[बोधकथा]**	३७
२४- मक्खन भोजनके साथ-साथ औषधि भी है **[आरोग्य-चर्चा]** (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)	३८
२५- होनी होकर रहती है **[बोधकथा]** (श्री 'दास बृजेन्द्र')	३९
२६- गोधन **[गो-चिन्तन]** (ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्रीब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराज)	४०
२७- श्रीगिरिराज-परिक्रमा **[तीर्थदर्शन]** (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)	४१
२८- सुभाषित-त्रिवेणी	४३
२९- व्रतोत्सव-पर्व **[श्रावणमासके व्रत-पर्व]**	४४
३०- कृपानुभूति	४५
३१- पढ़ो, समझो और करो	४७
३२- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- गिलहरीपर भगवान् रामकी कृपा	(रंगीन)		आवरण-पृष्ठ
२- ब्रह्मादि देवोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति	(,,)		मुख-पृष्ठ
३- गिलहरीपर भगवान् रामकी कृपा	(इकरंगा)		७

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़,** सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org**	e-mail : **kalyan@gitapress.org**	**✆ 09235400242 / 244**	**WhatsApp : 09235400242**
पुस्तक-बिक्रीविभाग :	e-mail : **booksales@gitapress.org**	**✆ 09235400242 / 244**	**WhatsApp : 09235400244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।
'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के **E-Books Option** पर निःशुल्क पढ़ें।

॥ श्रीहरिः ॥

छान्दोग्योपनिषद् (५।१९—२४)-में वैश्वानर-विद्याका विवरण प्राप्त होता है। भोजन करते समय पाँच मिनट शान्त-चित्तसे यह विधि सम्पन्न करनेसे गृहस्थको नित्य वैश्वानर-यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है।

भोजनका प्रथम ग्रास 'प्राणाय स्वाहा' **कहते हुए ग्रहण करें। इससे नेत्र-इन्द्रिय तृप्त होती है, सूर्य और द्युलोक आलोकित होते हैं।**

इसी प्रकार द्वितीय ग्रास 'व्यानाय स्वाहा' **कहकर ग्रहण करें। इससे श्रवण-इन्द्रिय तृप्त होती है, चन्द्रमा और दिशाएँ आलोकित होती हैं।**

तृतीय ग्रास 'अपानाय स्वाहा' **कहकर ग्रहण करना चाहिये। इससे वाक्-इन्द्रिय पुष्ट होती है, अग्नि और पृथ्वीतत्त्व आलोकित होते हैं।**

चतुर्थ ग्रास 'समानाय स्वाहा' **कहकर ग्रहण करनेसे मन-इन्द्रिय सन्तुलित रहती है तथा पर्जन्य और विद्युत्-तत्त्व आलोकित होते हैं।**

अन्तमें पंचम ग्रास 'उदानाय स्वाहा' **कहकर ग्रहण करनेसे त्वक्-इन्द्रिय दीप्त होती है और वायु तथा आकाशतत्त्व आलोकित होते हैं।**

यह वैश्वानर-यज्ञ नित्य भोजनकी सामान्य क्रियाको दिव्यता प्रदान कर देता है और भगवत्कृपाके प्रति हमें कृतज्ञ बनाता है।

—सम्पादक

कल्याण

याद रखो—जैसे ईंधन तथा घीसे आग बुझती नहीं, पर और भी धधकती है, वैसे ही भोगोंसे मनकी कामना मिटती नहीं, वरं और भी बढ़ती है। भोगोंसे मन कभी भरता ही नहीं। वस्तुओंसे कभी तृप्त होता ही नहीं। सारे जगत्‌की समस्त वस्तुएँ—पुत्र-परिवार, धन-ऐश्वर्य, अधिकार-पद, मान-कीर्ति प्राप्त हो जाय, तब भी वह तृप्त नहीं होगा—शान्त नहीं होगा।

याद रखो—जबतक मनमें अशान्ति है, तबतक न तो सुखकी प्राप्ति होगी, न आनन्दका ही अनुभव होगा। जैसे अशान्त वायुमें दीपक हिलता रहता है और समीपकी वस्तु भी यथार्थरूपमें नहीं दीखती; इसी प्रकार व्यग्र और अशान्त मन नित्य अपने समीपमें स्थित परम वस्तु भगवान्‌को और उनके अखण्ड सुख-स्वरूपको नहीं देख पाता तथा बाहर सारे जगत्‌में खोजता फिरता है। इसलिये मनको इच्छारहित करनेका प्रयत्न करो।

याद रखो—सन्तोषसे ही इच्छाका नाश होता है। सन्तोष न तो आलस्यका नाम है, न उद्यमहीनताका और न असफल-जीवनकी निराशाका ही। वस्तुकी बड़ी चाह थी, प्रयत्न करके थक गये—नहीं मिली, चलो सन्तोष करो—यह सन्तोष नहीं है। मनमें इच्छा बनी है, तबतक सन्तोष कैसा? सन्तोष तो सुख तथा आनन्दकी अनुभूतिका परम साधन है, जो भगवान्‌के मंगल-विधानपर विश्वास करनेसे या आत्माकी नित्य-सुखरूपतामें स्थित होनेसे प्राप्त होता है।

याद रखो—अप्राप्त वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छाका नाम ही असन्तोष है। अप्राप्त वस्तुके लिये आतुर रहना और नित्य प्राप्त वस्तुमें आनन्द न मानना असन्तोष है। आत्मा नित्य प्राप्त है, वह असंग है, मुक्त है और परम सुखरूप है। उस आत्मामें ही तृप्त रहना सन्तोष है। आत्मस्वरूपमें रमण करो और किसी बाहरी वस्तुकी इच्छा न करो। बस, सुखी हो जाओगे।

याद रखो—शरीरके प्रारब्धानुसार संसारमें जो पदार्थ मिलना है, वह बिना इच्छा किये—बिना आतुर हुए भी मिलेगा ही और जो प्रारब्धमें नहीं है, वह लाख रोने, आर्तनाद करने या विविध उपाय करनेपर भी नहीं मिलेगा। अपने पूर्वकृत कर्मके अनुसार भोगकी प्राप्ति होगी। वस्तुतः जो बोया है, उसीको काटना है।

याद रखो—परम सुखकी प्राप्तिके लिये इच्छामात्रका ही त्याग करना आवश्यक है। परंतु सम्पूर्ण इच्छा-त्यागका अभ्यास करनेवालेको पहले दूसरेकी निन्दा, दूसरेका अहित, परधन, परस्त्री, दम्भ, दुराचार, वैर, चोरी, संग्रह-परिग्रह और परायी वस्तुमात्रकी इच्छाका त्याग करना चाहिये। जितनी ही बुरी इच्छाओंका नाश होगा, उतनी ही सदिच्छा उत्पन्न होगी; फिर उन सदिच्छाओंको भी भगवान्‌के अर्पण कर देना होगा।

याद रखो—इच्छा जितनी ही कम होगी, उतना ही सुख बढ़ता जायगा। जो वस्तु अप्राप्त है, उसकी इच्छा न करो और जो प्राप्त है, उसका उपयोग अपने सुखके लिये न करके जगत्‌के लिये करो। इससे इच्छाका दमन होगा। जगत्‌के प्राणी-पदार्थोंमें सुख है ही नहीं, यह दृढ़ भावना करो। इससे इच्छाका त्याग सहज ही हो सकेगा। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

गिलहरीपर प्रभु रामकी कृपा

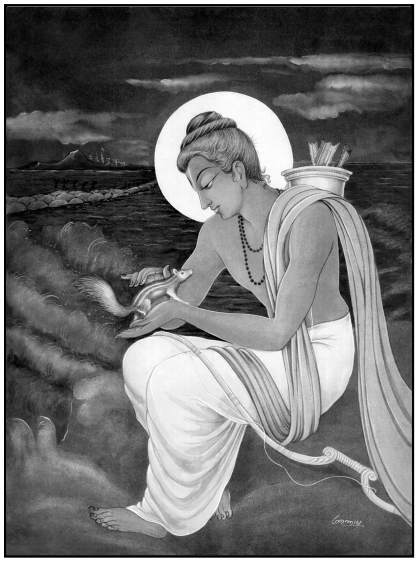

कहा जाता है कि जब लंका-विजयके लिये नल-नील समुद्रपर सेतु बनानेमें लगे थे और अपार वानर-भालुसमुदाय गिरिशिखर तथा वृक्षसमूह ला-लाकर उन्हें दे रहा था, एक गिलहरी भी मर्यादा-पुरुषोत्तमके कार्यमें सहायता करने वृक्षसे उतरकर वहाँ आ गयी। नन्ही-सी गिलहरी—उससे न वृक्षकी शाखा उठ सकती थी और न शिलाखण्ड। लेकिन उसने अपने उपयुक्त एक कार्य निकाल लिया। वह बार-बार समुद्रके जलमें स्नान करके रेतपर लोट-पोट होती और सेतुपर दौड़ जाती। वहाँ वह अपने शरीरमें लगी सारी रेत झाड़ देती और फिर स्नान करने दौड़ती। अविराम उसका यह कार्य चलता रहा।

महापुरुष तथा शास्त्र बतलाते हैं कि भगवान् साधन-साध्य नहीं हैं। जीवका महान्-से-महान् साधन उन सर्वेशको न तो विवश कर सकता है और न उनकी प्राप्तिका मूल्य बन सकता है। इसलिये किसने कितना जप, तप आदि किया, इसका वहाँ महत्त्व नहीं है। जीवनिष्ठ साधन तथा भगवन्निष्ठ कृपाके संयोगसे भगवत्प्राप्ति होती है, यह महापुरुष कहते हैं; किंतु भगवान् तो नित्य कृपाके अनन्त-अनन्त सागर हैं। जीव अप्रमत्त होकर अपनी शक्तिका पूरा उपयोग करके सच्ची श्रद्धा तथा प्रीतिसे जब साधन करता है, वे करुणावरुणालय प्रसन्न हो जाते हैं। कितने समय या कितना साधन किसीने किया, यह प्रश्न वहाँ रहता नहीं। भगवान् प्रसन्न होते हैं····वे नित्य प्रसन्न जो हैं।

गिलहरीकी चेष्टा बड़े कुतूहलसे, बड़ी एकाग्रतासे मर्यादा-पुरुषोत्तम देख रहे थे। उस क्षुद्र जीवकी ओर दूसरे किसीका ध्यान नहीं था; किंतु कबीरदासजीने कहा है न—

'चींटी के पग घुँघुरू बाजे सो भी साहब सुनता है।'

श्रीराघवेन्द्रने हनुमान्‌जीको संकेतसे पास बुलाकर उस गिलहरीको उठा लानेका आदेश दिया। हनुमान्‌जीने गिलहरीको पकड़कर उठा लिया और लाकर रघुनाथजीके किसलयकोमल बन्धूकारुण हाथपर रख दिया उसे। प्रभुने उस नन्हे प्राणीसे पूछा—'तू सेतुपर क्या कर रही थी? तुझे भय नहीं लगता कि कपियों या रीछोंके पैरके नीचे आ सकती है या कोई वृक्ष अथवा शिलाखण्ड तुझे कुचल दे सकता है?'

गिलहरीने हर्षसे रोम फुलाये, पूँछ उठाकर श्रीराघवके करपर गिरायी और बोली—'मृत्यु दो बार तो आती नहीं, आपके सेवकोंके चरणोंके नीचे मेरी मृत्यु हो जाय, यह तो मेरा सौभाग्य होगा। सेतुमें बहुत बड़े-बड़े शिलाखण्ड तथा वृक्ष लगाये जा रहे हैं। बहुत श्रम करनेपर भी नल-नील सेतुको पूरा समतल नहीं कर पा रहे हैं। ऊँची-नीची विषम भूमिपर चलनेमें आपके कोमल चरणोंको बड़ा कष्ट होगा, यह सोचकर पुलके छोटे-छोटे गड्ढे मैं रेतसे भर देनेका प्रयत्न कर रही थी।'

मर्यादा-पुरुषोत्तम प्रसन्न हो गये। उन्होंने वाम हस्तपर गिलहरीको बैठा रखा था। उस क्षुद्र जीवको वह आसन दे रखा था, जिसकी कल्पना त्रिभुवनमें कोई कर ही नहीं सकता। अब दाहिने हाथकी तीन अँगुलियोंसे उन्होंने गिलहरीकी पीठ थपथपा दी। कहते हैं कि गिलहरीकी पीठपर श्रीरामकी अँगुलियोंके चिह्नस्वरूप तीन श्वेत रेखाएँ बन गयीं और तभीसे सभी गिलहरियोंको वे रेखाएँ भूषित करती हैं।

स्वधर्मपालनका महत्त्व

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः।
परधर्मेण जीवन् हि सद्यः पतति जातितः॥

(मनु० १०।९७)

'अपना धर्म गुणरहित हो, तो भी श्रेष्ठ है और परधर्म अच्छी प्रकार अनुष्ठान किया हुआ भी श्रेष्ठ नहीं है; क्योंकि परधर्मसे जीवन बितानेवाला मनुष्य तुरन्त अपनी जातिसे पतित हो जाता है।'

गीतामें भगवान्‌ने भी कहा है—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥

(गीता ३।३५)

'अच्छी प्रकार आचरणमें लाये हुए दूसरेके धर्मकी अपेक्षा गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्मके पालनमें तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरेका धर्म भयको देनेवाला है।'

स्वधर्मपालनका महत्त्व और फल भगवान्‌ने यों बतलाया है—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८।४५-४६)

'अपने-अपने स्वाभाविक कर्मोंमें तत्परतासे लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। अपने स्वाभाविक कर्मोंमें लगा हुआ मनुष्य जिस प्रकारसे कर्म करके परम सिद्धिको प्राप्त होता है, उस विधिको सुनो। जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा (सेवा) करके मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।'

अभिप्राय यह है कि भगवान् इस जगत्‌की उत्पत्ति-स्थिति-संहार करनेवाले, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सबके प्रेरक, सबके आत्मा, सर्वान्तर्यामी और सबमें व्यापक हैं, यह सारा जगत् उन्हींकी रचना है और वे स्वयं ही अपनी योगमायासे जगत्‌के रूपमें प्रकट हुए हैं; अतः यह सम्पूर्ण जगत् भगवान्‌का है और मेरे शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा मेरे द्वारा जो कुछ भी यज्ञ, दान आदि स्ववर्णाश्रमोचित कर्म किये जाते हैं, वे सब भी भगवान्‌के हैं और मैं स्वयं भी भगवान्‌का हूँ—ऐसा समझना चाहिये; क्योंकि समस्त देवताओंके एवं अन्य प्राणियोंके आत्मा होनेके कारण वे ही समस्त कर्मोंके भोक्ता हैं (गीता ५।२९)—इस प्रकार परम श्रद्धा-विश्वासके साथ समस्त कर्मोंमें ममता, आसक्ति और फलेच्छाका त्याग करके भगवान्‌के आज्ञानुसार उन्हींकी प्रसन्नताके लिये अपने स्वाभाविक कर्मोंके द्वारा जो समस्त जगत्‌का आदर-सत्कार और सेवा करता है अर्थात् समस्त प्राणियोंको सुख पहुँचानेके लिये उनके हितमें रत हुआ उपर्युक्त प्रकारसे स्वार्थ-त्यागपूर्वक अपने कर्तव्यका पालन करता है, वह मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

इन श्लोकोंमें 'नर' और 'मानव' शब्द देकर भगवान्‌ने यह व्यक्त किया है कि प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह किसी भी वर्ण या आश्रममें क्यों न हो, अपने कर्मोंसे भगवान्‌की पूजा करके परम सिद्धिरूप परमात्माको प्राप्त कर सकता है; परमात्माको प्राप्त करनेमें सभी मनुष्योंका समान अधिकार है। अपने अध्ययनाध्यापन आदि कर्मोंको उपर्युक्त प्रकारसे भगवान्‌के समर्पण करके उनके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनेवाला ब्राह्मण जिस पदको प्राप्त होता है, अपने प्रजा-पालनादि कर्मोंके द्वारा भगवान्‌की पूजा करनेवाला क्षत्रिय भी उसी पदको प्राप्त होता है; उसी प्रकार अपने वाणिज्य, गोरक्षा आदि कर्मोंद्वारा भगवान्‌की पूजा करनेवाला वैश्य तथा अपने सेवा-सम्बन्धी कर्मोंद्वारा भगवान्‌की पूजा करनेवाला शूद्र भी उसी परमपदको प्राप्त होता है। यही बात आश्रमधर्मके सम्बन्धमें भी समझ लेनी चाहिये।

अतएव कर्मबन्धनसे छूटकर परमात्माको प्राप्त करनेका, जो मानव-जीवनका चरम उद्देश्य और लक्ष्य

है, यह बहुत ही सुगम मार्ग है। इसलिये मनुष्यको उपर्युक्त निष्काम-भावसे तत्परतापूर्वक अपने धर्मका पालन करना चाहिये, भारी आपत्ति पड़नेपर भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। महाभारतमें बतलाया भी है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः॥

(स्वर्गारोहण० ५।६३)

'मनुष्यको किसी भी समय कामसे, भयसे, लोभसे या जीवनरक्षाके लिये भी धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य हैं तथा जीव नित्य है और जीवनका हेतु अनित्य है।'

इसलिये मरण-संकट उपस्थित होनेपर भी मनुष्यको चाहिये कि वह हँसते-हँसते मृत्युको स्वीकार कर ले, पर स्वधर्मका त्याग किसी भी हालतमें न करे। इसीमें मनुष्यका सब प्रकारसे कल्याण है।

बोध-कथा—

मनुष्यका गर्व व्यर्थ है

इंगलैण्डके इंजीनियरोंने वर्षों सरतोड़ परिश्रम किया था। सैकड़ों मजदूर लम्बे समयतक काम करते रहे थे। प्रसिद्ध जलयान टिटैनिक जिस दिन जलमें उतारा गया, स्वयं इंगलैण्डके बादशाह वहाँ उपस्थित थे। इतना विशाल, इतना भव्य और इतना सुदृढ़ जलयान कि विश्वमें किसीने कल्पना न की हो। एक पूरे नगर जितना विस्तृत था वह। उसमें विश्राम, भोजन आदिके स्थान तो थे ही, उद्यान थे, क्रीड़ामंच थे। फुटबॉलका मैदान था। ऐसी कोई सुविधा उसमें अप्राप्य नहीं थी, जो इंगलैण्डके नागरिकको पृथ्वीपर किसी नगरमें मिल सकती थी। निर्माताओंने बार-बार घोषणा की थी—'टिटैनिकको कोई तूफान तोड़ नहीं सकता। टिटैनिक अभेद्य है।'

विशेषज्ञोंने इस घोषणाका समर्थन किया था। समूचे इंगलैण्डका मस्तक गर्वसे ऊँचा हो गया था। टिटैनिक जलमें उतरा और अमेरिकाकी यात्रापर निकला। इंगलैण्डके प्रख्यात पुरुष उसमें थे। लार्ड किचनर भी उसीमें थे। बहुतसे पार्लियामैण्टके सदस्य, लार्ड-सभाके सदस्य, विख्यात पत्रकार तथा दूसरे प्रसिद्ध पुरुषोंको उनके परिवारके साथ लेकर टिटैनिकने अपनी पहली यात्रा प्रारम्भ की।

अनन्त समुद्रके वक्षःस्थलपर गर्वसे टिटैनिक चला जा रहा था। आज विश्वने देखा कि मानव क्या कुछ कर सकता है। विशाल टिटैनिक—उसके यात्री अपने आमोद-प्रमोदमें निमग्न थे। बेतारके तारसे सूचना मिली—'सावधान रहना चाहिये।'

विख्यात पत्र 'रिव्यू आफ रिव्यू' के स्वामी मि० स्टेड भी उसी यानमें थे। सूचना पाकर वे जहाजके कप्तानके पास गये। कप्तान हँसा—'व्यर्थकी बात! आप निश्चिन्त रहें। हमारा टिटैनिक अजेय है। उसकी लौह-दीवारें अभेद्य हैं।'

परंतु पूरे दस मिनट भी नहीं बीते थे इस बातको जब कि टिटैनिक फट गया था, समुद्रमें बहते हुए एक विशाल हिमपर्वतसे टकराकर। उसमें समुद्रका जल वेगपूर्वक प्रवेश कर रहा था। यात्री जीवनकी आशा छोड़ चुके थे और कप्तान बेतारके तारपर बार-बार सन्देश भेज रहा था—'टिटैनिक डूब रहा है। हमारी शीघ्र सहायता कीजिये।'

मनुष्यकी विद्या-बुद्धिके गर्वका प्रतीक टिटैनिक अपने महामहिम यात्रियोंके साथ डूब गया सागरके अतल जलमें।

शरणागतिकी पूर्णावस्था

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

श्रीमद्भगवद्गीताका सर्वोपरि सिद्धान्त है—'**वासुदेवः सर्वम्**' अर्थात् सब कुछ भगवान् ही हैं। एक भगवान्ने ही समस्त सृष्टिकी रचना की है और समस्त सृष्टिके रूपमें वे ही हैं। उनसे भिन्न संसारमें कुछ भी नहीं है। एक भगवान् ही अनेक रूपोंमें प्रकट हुए हैं—'***बन गये आप अकेले सब कुछ नाम धरा संसार।***' चौरासी लाख योनियोंमें जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज आदि चर-अचर असंख्य जीव हैं। इनके सिवाय देवता, पितर, गन्धर्व, भूत, प्रेत, पिशाच आदि भी कई योनियाँ हैं। इन सबके बीज अविनाशी परमात्मा हैं।

गीता (७।१९)-में भगवान् कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

बहुत जन्मोंके अन्तमें अर्थात् मनुष्य जन्ममें 'सब कुछ वासुदेव ही है' ऐसा जो ज्ञानवान् मेरे शरण होता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

गीता (१०।३९)-में भगवान् कहते हैं—

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

'हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणियोंका जो बीज है, वह मैं ही हूँ। मेरे बिना कोई भी चर-अचर प्राणी नहीं है अर्थात् चर-अचर सब कुछ मैं ही हूँ।'

इसी प्रकार चौदहवें अध्यायमें भी भगवान्ने कहा है—

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

हे कुन्तीनन्दन! सम्पूर्ण योनियोंमें प्राणियोंके जितने शरीर पैदा होते हैं, मूल प्रकृति उन सबकी माता है और मैं बीज-स्थापन करनेवाला पिता हूँ।

श्रीमद्भागवत (२।९।३२)-में भी भगवान् इसी सत्यका प्रतिपादन करते हैं—

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥

सृष्टिके पूर्वमें भी मैं ही था, मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं था और सृष्टिके उत्पन्न होनेके बाद जो कुछ भी यह दृश्यवर्ग है, वह मैं ही हूँ। जो सत्, असत् और उससे परे है, वह सब मैं ही हूँ तथा सृष्टिके बाद भी मैं ही हूँ एवं इन सबका नाश हो जानेपर जो कुछ बाकी रहता है,वह भी मैं ही हूँ।'

इसी प्रकार उद्धवजीको उपदेश देते हुए भगवान् कहते हैं—

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमंजसा॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।२४)

मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो कुछ (शब्दादि विषय) ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। अतः मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है, यह सिद्धान्त आप विचारपूर्वक शीघ्र समझ लें अर्थात् स्वीकार करके अनुभव कर लें।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सब कुछ भगवान् ही हैं। अहंता और ममताके कारण जिस जगत्को हम अपना मान लेते हैं—**ययेदं धार्यते जगत्** (गीता ७।५), राग-द्वेषके वशीभूत होनेसे वही संसार हमें प्रिय और अप्रिय प्रतीत होने लगता है और उसके साथ संयोग-वियोग होनेसे हम सुखी-दुखी होते रहते हैं। यह नाशवान् और जड़ संसार अविनाशी परमात्माके कारण ही प्रकाशित होता है। इसीलिये भगवान्ने गीताके क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोग नामक अध्यायमें यह ज्ञानदृष्टि दी है—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥

(गीता १३।२७)

जो नष्ट होते हुए सम्पूर्ण प्राणियोंमें परमेश्वरको नाशरहित और समरूपमें देखता है, वही वास्तवमें सही देखता है, नाशवान् संसारके सृजन, पालन, संहारमें एक परमेश्वरकी ही अविनाशी सत्ता काम करती है।

इसे इस प्रकार भी समझा जा सकता है कि मूल रूपमें जैसे एक सोने, लोहे तथा मिट्टीसे ही क्रमशः विभिन्न प्रकारके गहने, अस्त्र-शस्त्र और बर्तन आदि बनते हैं, ऐसे ही भगवान्से बना हुआ विविध उपाधियोंवाला यह सब संसार भगवान् ही है—'**वासुदेवः सर्वम्।**' शरणागत भक्तकी दृष्टि आरम्भमें 'मैं-मेरे'

अर्थात् स्वयंपर रहती है, फिर 'तू-तेरे' अर्थात् भगवान्‌पर रहती है और अन्ततः 'तू ही तू' अर्थात् सब कुछ भगवान् ही हैं, ऐसी दृष्टि हो जाती है।' 'मैं, तू, यह, वह'का भेद मिट जाता है। शरणागत और शरण्यकी अभिन्नता हो जानेपर एक शरण्य ही रह जाता है। प्रेमस्वरूप एक भगवान् ही रह जाते हैं।

बोध-कथा—

धनका यथार्थ

सुवर्णजात प्रतिदिन सहस्त्र सुवर्णमुद्राओंका दान करते थे। कोई भी याचक उनके घरसे निराश, खाली हाथ नहीं लौटता था। परंतु सुवर्णजातके निजी सेवक अनुरथने एक दिन कुछ माँगा, तो उन्होंने एक ही नपा-तुला उत्तर दे दिया कि 'अनुरथ! मैंने तुम्हें बिना माँगे ही कई बार कुछ देनेका विचार किया, पर तुम्हें जब भी कुछ देनेके लिये हाथ बढ़ाता हूँ, उसी वक्त सूर्यदेवता हाथ पकड़ लेते हैं। क्या करूँ, मैं तेरेको कुछ देनेमें विवश हूँ!' अनुरथ जड़-बुद्धि नहीं था। वह निरन्तर अवसरकी प्रतीक्षामें रहने लगा। एक बार सूर्यग्रहण पड़ा, अनुरथ उस समय स्वामीके समीप ही था। ग्रहण प्रारम्भ होते ही उसने कहा, 'स्वामी! इस समय तो सूर्यको राहुने पकड़ लिया है, अब तो वे रोक नहीं सकते। अब तो कुछ दीजिये।' सुवर्णजातका अनुरथको न देनेमें एक रहस्य था। पर आज सुवर्णजात पकड़में आ गये, इनकार नहीं कर सके और उन्होंने अपने निजी सेवक अनुरथको बहुत-सा धन और सुवर्णमुद्राओंका दान किया।'

अनुरथके मनकी दमित इच्छाएँ, जो धनके अभावमें प्रसुप्त पड़ी थीं, एकाएक भड़क उठीं। अबतक जहाँ उसका संयमित जीवन बीत रहा था, अब अनुरथपर भोग-विलासका भूत चढ़ बैठा। मकान बनानेसे लेकर विवाह करनेतककी जो भी महत्त्वाकांक्षाएँ थीं, तत्काल उसने पूरी कर लीं और देखते-देखते न केवल सारा धन स्वाहा कर लिया, अपितु अनेक रोग और दुर्बलताएँ भी उसने पैदा कर लीं।

जबतक धन रहा, कामकी कौन पूछता? अस्तु, धन्धा भी उसने छोड़ दिया था। अब जब पासमें कुछ न बचा तो फिर अनुरथ सुवर्णजातके पास गया और कामपर रखनेकी याचना करने लगा। सुवर्णजातने उत्तर दिया 'तात! रिक्तस्थानकी पूर्ति कर ली गयी, अब उस सेवकको हटाना नीतिविरुद्ध है, तुम्हें कामपर रखना तो असम्भव है, अलबत्ता तुम्हें मैं एक उपाय बता सकता हूँ। तुम 'श्री' बीज लगाकर यदि भगवती लक्ष्मीकी उपासना करो, तो उनसे तुम्हें अवश्य ही धन प्राप्त हो सकता है। अनुरथ उसी दिनसे देवीकी उपासना करने लगा।

भगवती लक्ष्मी प्रसन्न हुईं और वर माँगनेको कहने लगीं। लक्ष्मीजी बोलीं, 'वत्स! घर जा, कुछ काम कर, उद्यम-उद्योग कर, तो मैं स्वतः तेरे पास आ जाऊँगी।' किंतु भोगवृत्तिमें आसक्त अनुरथके पास इतना समय कहाँ था? वह लक्ष्मीसे हठ करता रहा। लक्ष्मीजी बोलीं, 'अच्छा, तो तुम पहले भोगीलाल और उद्योगीलालके पास जाकर देख आओ, दोनोंमेंसे किसकी लक्ष्मी तुम्हें पसन्द है, वैसी ही लक्ष्मी मैं तुम्हें दे दूँगी।'

अनुरथने क्रमसे जाकर दोनों स्थान देखे। भोगीलालके पास धन-सम्पत्ति तो बहुत थी, पर अपनी भोग-दृष्टिके कारण उसने अपना स्वास्थ्य चौपट कर लिया था। घरपर लड़कोंमें दिनभर कलह मची रहती। 'कर' को लेकर आये दिन राजकीय कर्मचारी उसे सताते रहते, सारा जीवन आतंक, भय, चिन्ता, निराशा और व्याधियोंसे ग्रस्त रहता। उधर उद्योगीलालके पास जाकर देखा तो उनका कारोबार खूब फैल रहा था। घरवाले खूब अच्छा खाते भी थे, पहनते भी अच्छा थे, परिश्रम भी उतना ही करते थे, फलतः स्वस्थ भी थे और प्रसन्न भी। हाँ, उसे कलके लिये मुश्किलसे ही बचता था। वापस लौटकर अनुरथने देवीसे कहा, 'भगवती! अब मुझे धन नहीं चाहिये। मैंने सारा मर्म समझ लिया। धनका यथार्थ भोगमें नहीं, उसका सदुपयोग करनेमें है। धनका सदुपयोग वही कर सकता है, जो नीति और परिश्रमपूर्वक अपनी कमाई आप करता है, इसलिये अब मुझे वरदानका धन नहीं चाहिये, आवश्यकतानुसार मैं स्वयं ही पैदा कर लूँगा।' [पं० श्रीशंकरलालजी तिवारी]

भगवन्नामके मूल्यपर एक दृष्टान्त

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक श्रद्धालु भक्त प्रतिदिन गाँवके बाहर एक महात्माके पास जाया करता था। जब महात्माकी सेवा करते-करते उसे बहुत दिन बीत गये, तब महात्माने उसे अधिकारी समझकर कहा कि 'वत्स! तेरी मति भगवान्‌में है, तू श्रद्धालु है, गुरुसेवापरायण है, कुतार्किक नहीं है, साधनमें आलसी नहीं है, शास्त्रके वचनोंमें विश्वासी है, किसीका बुरा नहीं चाहता, किसीसे घृणा और द्वेष नहीं करता, सरल-चित्त है, काम, क्रोध, लोभसे डरता है, सन्तोंका उपासक है और जिज्ञासु है; इसलिये तुझे एक ऐसा गोपनीय मन्त्र देता हूँ जिसका पता बहुत ही थोड़े लोगोंको है। यह मन्त्र परम गुप्त और अमूल्य है, किसीसे कहना नहीं!' यों कहकर महात्माने उसके कानमें धीरेसे कह दिया, 'राम'।

श्रद्धालु भक्त मन्त्रराज 'राम' का जप करने लगा। वह एक दिन गंगा नहाकर लौट रहा था, तो उसका ध्यान उन लोगोंकी तरफ गया जो हजारोंकी संख्यामें उसीकी तरह गंगा नहाकर जोर-जोरसे 'राम-राम' पुकारते चले आ रहे थे। सुनता तो रोज ही था, परंतु कभी इस ओर उसका ध्यान नहीं गया था। आज ध्यान जाते ही उसके मनमें यह विचार आया कि महात्मा तो राममन्त्रको बड़ा गुप्त बतलाते थे, मुझसे कह दिया था कि किसीसे कहना नहीं, परंतु इसको तो सभी जानते हैं; हजारों मनुष्य 'राम-राम' पुकारते हुए चलते हैं। उसके मनमें कुछ संशय उत्पन्न हो गया। वह अपने घर न जाकर सीधा गुरुके समीप गया। महात्माने कहा कि 'वत्स! आज इस समय कैसे आया?' उसने अपना संशय सुनाकर कहा कि 'प्रभो! मेरे समझनेमें भ्रम हुआ है या इसका और कोई मतलब है? अपनी दिव्यवाणीसे मेरा सन्देह दूर करनेकी कृपा कीजिये!'

महात्माने उसके मनकी बात जान ली और कहा कि 'भाई! तेरे प्रश्नका उत्तर पीछे दिया जायगा। पहले तू मेरा एक काम कर।' महात्माने झोलीमेंसे एक चमकती हुई काँचकी-सी गोली निकाली और उसे भक्तके हाथमें देकर कहा—'बाजारमें जाकर इसकी कीमत करवाकर लौट आ। बेचना नहीं है, सिर्फ कीमत जाननी है। सावधान! कीमत अँकानेमें कहीं भूल न हो जाय।'

भक्त श्रद्धालु था, आजकलका-सा कोई होता तो पहले ही गुरु महाराजको आड़े हाथों लेता और कहता कि 'मैं तुम्हारे काँचके टुकड़ेकी कीमत जँचवाने नहीं आया हूँ, तुम्हारा कोई गुलाम नहीं हूँ। पहले मेरे प्रश्नका उत्तर दो, नहीं तो मेरे साथ छल करनेके अपराधमें तुमपर कोर्टमें नालिश की जायगी।' वह समय दूसरा था। भक्त अपना प्रश्न वहीं छोड़कर गुरुका काम करनेके लिये बाजारमें गया। सबसे पहले एक शाक बेचनेवाली मिली। भक्तने गुरुकी चीज उसे दिखलाकर कहा कि 'इसकी क्या कीमत देगी?' शाक बेचनेवालीने पत्थरकी चमक और सुन्दरता देखकर सोचा कि बच्चोंके खेलनेके लिये काँचकी बड़ी सुन्दर गोली है। बाजारमें कहीं ऐसी नहीं मिलती। उसने कहा—'सेर-दो-सेर आलू या बैगन ले लो।' वह आगे बढ़ा, एक सुनारकी दूकान थी, वहाँ ठहरा। सुनारको गोली दिखलाकर पूछा—'भाई! इसकी क्या कीमत दोगे?' सुनारने हाथमें लेकर देखा और उसे अच्छा पुखराज (नकली हीरा) समझकर सौ रुपये देनेको कहा। भक्तकी दिलचस्पी बढ़ी, वह और आगे बढ़ा, एक महाजनके यहाँ गया। महाजनने गोली देखकर मनमें विचार किया कि इतना बड़ा और ऐसा अच्छा हीरा जो जगत्‌में कहाँसे होगा? है तो पुखराज ही, परंतु हीरा-सा लगता है। बड़े घरमें नकली भी असली ही समझा जाता है, उसने हजार रुपयोंमें माँगा। भक्तने सोचा कि हो-न-हो, है तो कोई बड़ी मूल्यवान् वस्तु। वह और आगे बढ़ा और एक जौहरीकी दूकानपर गया। जौहरीने परीक्षा की तो उसे हीरा ही मालूम दिया, परंतु इतना बड़ा और ऐसा हीरा कभी उसने देखा ही न था। इसलिये उसे कुछ सन्देह रहा, तथापि उसने एक

लाख रुपयोंमें उसे माँगा। भक्त 'बेचना नहीं है' कहकर एक सबसे बड़े जौहरीकी दूकानपर गया। जब गुरुके पाससे आया था तब तो उसे जौहरियोंके पास जानेका साहस ही नहीं था, वह स्वयं उसे मामूली काँच समझता था, परंतु ज्यों-ज्यों कीमत बढ़ती गयी, त्यों-त्यों उसका भी साहस बढ़ता गया। बड़े जौहरीने हीरा देखकर कहा कि 'भाई! यह तो अमूल्य है। इस देशकी सारी जवाहरात इसके मूल्यमें दे दी जाय तब भी इसका मूल्य पूरा नहीं होता। इसे बेचना नहीं।' यह सुनकर भक्तने विचार किया कि अब तो सीमा हो चुकी।

वह लौटकर महात्माके पास गया और बोला कि 'महाराज! इसकी कीमत कोई कर ही नहीं सकता, यह तो अमूल्य वस्तु है। गुरुने पूछा कि 'तुमको यह किसने बताया?' भक्तने कहा कि 'प्रभो! मैंने यहाँसे बाजारमें जाकर पहले शाकवालीसे पूछा तो सेर-दो-सेर शाक देना स्वीकार किया, सुनारने सौ रुपये कहे, महाजनने हजार, जौहरीने लाख और अन्तमें सबसे बड़े जौहरीने इसे अमूल्य बतलाते हुए कहा कि यदि देशकी सारी जवाहरात इसके बदलेमें दे दी जाय, तब भी इसका मूल्य पूरा नहीं हो।' महात्माने उससे रत्न लेकर अपनी झोलीमें रख लिया। भक्तने कहा कि 'महाराज! अब मेरी शंका-निवारण कीजिये।' महात्माने कहा—'भाई! मैं तो तुझे शंका-निवारणके लिये दृष्टान्तसहित उपदेश दे चुका। तू अभी नहीं समझा, इसलिये फिर समझाता हूँ। इस रत्नकी कीमत करानेमें ही तेरी शंका दूर होनी चाहिये थी। रत्न अमूल्य था, परंतु उसकी असली पहचान केवल सबसे बड़े जौहरीको ही हुई, दूसरे नहीं पहचान सके। यदि मैंने तुझे बेचनेके लिये आज्ञा दे दी होती तो तू दो सेरके बदले पाँच-सात सेर शाकके मूल्यपर इसे बेच ही देता, आगे बढ़ता ही नहीं। अमूल्य वस्तु कौड़ीके मूल्य चली जाती। कितना बड़ा नुकसान होता। इसी प्रकार श्रीराम-नाम भी गुप्त और अमूल्य पदार्थ है, इसकी पहचान सबको नहीं है और न इसका मूल्य ही सब कोई जानते हैं। चीज हाथमें होनेपर भी जबतक उसकी पहचान नहीं होती, तबतक उसका असलीपन गुप्त ही रहता है। इसी तरह राम-नामके असली महत्त्वको भी बहुत कम लोग जानते हैं। जो राम-नामका व्यवसाय करते हैं, वे बेचारे बड़े दयाके पात्र हैं; क्योंकि वे इस अमूल्य धन राम-नामको कौड़ीके मूल्यपर बेच देते हैं।'

बोध-कथा—

लगन हो तो सफलता निश्चित है

कहा जाता है कि बचपनमें पण्डित बोपदेवजीकी स्मरणशक्ति अत्यन्त क्षीण थी। वे बहुत परिश्रम करते थे, किंतु व्याकरणके सूत्र उन्हें कण्ठस्थ नहीं हो पाते थे। उनके सहपाठी उन्हें चिढ़ाया करते। गुरुदेव भी उन्हें झिड़कते थे। इन सबसे दुखी होकर बोपदेव एक दिन गुरुगृहसे भाग खड़े हुए। वे एक कुएँके पास जा बैठे। अब अध्ययन छोड़ देनेका उन्होंने विचार कर लिया था।

कुएँपर ग्रामकी नारियाँ जल भरने आती थीं। कुएँसे जल खींचकर वे घड़ेको पत्थरपर रख देती थीं तनिक देरको और रस्सी समेटकर पीछे घड़ेको उठाती थीं। बोपदेवने देखा कि कुएँके मुखपर जो पत्थर है, उसमें पानी खींचनेकी रस्सीसे कई गड्ढे पड़ गये हैं और जहाँ महिलाएँ घड़ा रखती हैं, वहाँ भी घड़ा रखते-रखते पत्थरमें गड्ढा बन गया है। बोपदेवके मनने कहा—'जब कोमल रस्सी और मिट्टीका घड़ा बार-बारकी रगड़से पत्थरमें गड्ढा बना सकते हैं, तब क्या निरन्तर दृढ़ अभ्याससे तुम विद्वान् नहीं हो सकते?'

बोपदेव वहींसे गुरुगृहमें लौट आये। वे अध्ययनमें जुट गये। सच्ची लगन और दृढ़ अभ्यासके कारण आगे वे प्रसिद्ध विद्वान् हुए। देवगिरिके यादव नरेश महादेवके वे सभापण्डित बने। पाणिनीय व्याकरणकी दुरूहता उन्होंने अनुभव की। इसीलिये मुग्धबोध नामका संस्कृतका सुगम व्याकरण बनाया।

बालक भगवत्स्वरूप है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

बालक मानव-समाजकी सम्पत्ति हैं। उनके सुरक्षित तथा विकसित होनेसे ही समाजका विकास हो सकता है। उनके सुधारके लिये अभिभावकों तथा अध्यापकोंके सुधारकी अत्यन्त आवश्यकता है; क्योंकि बालक जैसा देखते हैं, वैसा ही बन जाते हैं। बड़े ही खेदकी बात तो यह है कि आज इस बातपर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि वर्तमान युवक और युवतियाँ मनमानी करने लगे हैं; क्योंकि उन्हें बाल्यकालमें जो देखनेको मिलना चाहिये, वह नहीं मिला। बालक समझानेसे नहीं बदलते। वे तो जैसा देखते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। बालकोंमें स्वभावसे ही सचाईकी खोज तथा क्रियाशीलता होती है। यदि उन्हें बुराई देखनेको न मिले और उनकी प्राप्त शक्तिको सुरक्षित रखा जाय तो वे बड़ी ही सुगमतापूर्वक अपने लक्ष्यतक पहुँच सकते हैं।

प्रकृतिकी गोदमें तो बालक स्वभावसे ही सरल, ईमानदार, निर्भय एवं सहृदय होता है, पर उस बेचारेके कोमल चित्तपर अनेक प्रकारके लालच तथा भयका बोझा अभिभावकों तथा अध्यापकोंद्वारा लाद दिया जाता है। बालकोंमें उत्पन्न हुए प्रश्नोंका उत्तर न देकर उनकी समझको दबा दिया जाता है। इतना ही नहीं, अपने दूषित स्वभावसे उनको ऐसा दृश्य दिखा देते हैं, जिससे उनमें झूठ, कपट तथा दम्भ आ जाता है। उदाहरणार्थ—एक बालिका जिसकी आयु लगभग दो वर्षकी थी, उसके अभिभावकने उसकी रुचिके विपरीत बलपूर्वक गोदीमें लेकर ठण्डे पानीसे स्नान करा दिया। बालिका उस समय तो थोड़ी देर रोकर चुप हो गयी, पर उस घटनाका प्रभाव उसके मनपर ऐसा पड़ा कि लगभग दो वर्षके बाद वही व्यक्ति, जिसने उसे उसकी रुचिके विरुद्ध ठण्डे पानीसे स्नान करा दिया था, जब उसे मिला तो उस व्यक्तिको देखते ही उसने सबसे प्रथम यह झूठी बात अपनी तोतली भाषामें कही कि 'मैं हन्नू (स्नान) कर आयी हूँ'; यद्यपि बालिकाने उस समय स्नान नहीं किया था। इस झूठको उसे उसी भयने सिखाया, जो उसे दो वर्षकी आयुमें मिला था। उस बालिकाके मनसे भय निकालनेके लिये उसे एक योग्य शिक्षककी देखभालमें रख दिया गया। शिक्षक महोदयने उसे बड़े ही स्नेहपूर्वक तैरना सिखाया। बालिकाने लगभग दस वर्षकी आयुमें काशी नगरकी गंगा भी तैरकर पार की। पर इतने प्रयत्नके होते हुए भी उसका भय पूर्णरूपसे नहीं निकला। अब भी वह तैरते समय कुछ-न-कुछ भयभीत हो ही जाती है। यह घटना जिसके द्वारा हुई, उसीके कथनानुसार लिखायी गयी है। अब पाठक ही सोचें कि बालिकाके भीतरसे थोड़ा-सा भय निकालनेके लिये उसके अभिभावकोंको कितना प्रयत्न करना पड़ रहा है। अतएव अभिभावकोंको इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिये कि बालकोंके मनपर भयका प्रभाव न हो। ऐसा होनेपर भयके कारण जो बुराइयाँ आ जाती हैं, उनसे उनकी रक्षा हो सकती है।

बालकका सुधार वही कर सकता है, जो मनका सुधार कर सकता है। इसी कारण प्राचीन कालमें बालकोंको उन्हीं लोगोंकी देखभालमें रखा जाता था, जो मन-इन्द्रियोंको जीतकर सेवा तथा सत्यकी खोजमें एवं भगवत्-चिन्तनमें लगे रहते थे; किंतु आज तो दुर्भाग्यवश बालकोंको मोहयुक्त माता-पिताकी गोदमें अथवा बिगड़े हुए नौकरोंकी गोदमें ही पोषण तथा शिक्षण मिलता है। मोहकी गोदमें न्याय और नौकरोंकी गोदमें यथेष्ट स्नेह नहीं मिलता; न्याय न मिलनेसे बालकमें बेईमानी और स्नेह न मिलनेके कारण हृदयहीनता आ जाती है, जो सभी दोषोंका मूल है। जबतक बाल-मन्दिरद्वारा बच्चोंको मोहयुक्त माता-पिता तथा नौकरोंकी गोदसे मुक्त न कर दिया जायगा, तबतक वे ईमानदार एवं हृदयशील न हो सकेंगे।

मन और बालक दोनोंके स्वभावमें समानता है। अतः जो लोग मनको शुद्ध करनेके लिये प्रयत्नशील हैं, वे ही बालकोंका यथेष्ट पोषण तथा शिक्षण कर सकते हैं। इस सिद्धान्तके आधारपर हिन्दू-संस्कृतिमें वनस्थोंके द्वारा ही बालशिक्षाका विधान बना दिया गया था, पर अब तो वह प्रथा ही मिट गयी है। आज तो बालकोंका पोषण तथा शिक्षण सिक्केपर ही निर्भर है, जिससे शिक्षित होनेपर भी प्राणी अर्थके पीछे दौड़ता है। ऐसी दशामें भौतिकवादके आक्रमण एवं छल-कपटसे प्राणी बचा रहे, यह असम्भव-सा हो गया है। मनके सुधारके साथ-साथ ही बालकोंका सुधार करना होगा अर्थात् स्वयं साधक बनकर ही बालकोंकी यथेष्ट सेवा

की जा सकती है। बालकोंकी सेवा ही मानव-समाजकी सच्ची सेवा है। जिस देश, जाति एवं समाजके बालकोंका पोषण तथा शिक्षण विधिवत् नहीं किया जाता, वह देश, जाति तथा समाज कभी ऊँचा नहीं उठ सकता। यही कारण है कि आज अनेक प्रकारके सुधार किये जाते हैं, पर परिणाम विपरीत ही देखनेमें आता है।

बालकोंका शिक्षण तथा पोषण विधिवत् हो, इसके लिये जन्म देनेवाले माता-पिताकी अपेक्षा अर्थ तथा कामसे रहित धर्मके माता-पिताओंकी परम आवश्यकता है; क्योंकि जितेन्द्रियता तथा संयमपूर्वक ही बच्चोंका यथेष्ट शिक्षण तथा पोषण हो सकता है। जबसे बालकोंकी शिक्षाका दायित्व केवल जन्म देनेवाले माता-पितापर ही निर्भर हो गया है, तबसे अर्थका महत्त्व बढ़ गया है, जिसके कारण प्राणीका मन अर्थलोलुपता तथा जड़तामें आबद्ध हो गया है। प्रत्येक माता-पिताके मनमें बहुधा यही इच्छा बनी रहती है कि सन्तानके पोषण तथा शिक्षणके लिये अधिक-से-अधिक सम्पत्ति एकत्रित कर ली जाय। उसके लिये जो नहीं करना चाहिये, वह भी वे करने लगते हैं। यद्यपि बालक समाजकी विभूति है, उसके शिक्षण और पोषणका दायित्व समाजपर है; पर श्रम, संयम, सदाचार तथा विवेकके द्वारा बालकोंकी सेवा करनेके लिये मानव अपने जीवनका विभाजन नहीं करता। केवल दानवीर बनकर बड़े-बड़े विद्यालय खोलता है। उसका परिणाम बालकोंके मनपर केवल धनकी महत्ताका स्थापन ही होता है। अत: विद्यालयसे निकलते ही बालक धन कमानेमें लग जाता है। उसे यह कभी देखनेको ही नहीं मिला कि सच्चरित्रता, श्रम एवं विवेकके द्वारा भी किसीने सेवा की है। वह तो समझता है कि सम्पत्ति ही पोषण और शिक्षणकी जननी है। इसी प्रमादका फल यह हुआ है कि आज बड़े-बड़े विज्ञानवेत्ता, इंजीनियर, राजनीतिज्ञ एवं लेखक अपनेको अर्थके बदलेमें बेचकर अपना और समाजका ह्रास ही कर रहे हैं।

अच्छे बालक ही अच्छे मानव हो सकते हैं। अत: बालकोंकी उचित सेवा करनेके लिये जनता तथा राष्ट्र एवं सुधारकोंको विशेष ध्यान देना चाहिये। जनताको चाहिये कि जहाँ-जहाँ सरकार स्कूल खोले, वहाँ-वहाँ वह बाल-मन्दिर बनाये, जिनमें शरीरद्वारा चरित्रबलसे एवं मनोविज्ञानके द्वारा बालकोंकी यथेष्ट सेवासे जीवन देनेवाले ऐसे साधक हों, जो अर्थ-कामसे रहित निष्काम सेवा एवं भगवत्-चिन्तनमें तत्पर हों। जब बालक समता, न्याय, प्रेम एवं आस्तिक जीवन देखेंगे, तब वे स्वयं वैसे ही बन जायँगे। लगभग छ: घंटे स्कूलमें विज्ञान एवं भाषा आदिकी शिक्षा प्राप्तकर लगभग अठारह घंटे ऐसे साधकोंकी देख-रेखमें, जिन्होंने अपना निर्माण किया है—रहकर सदाचार, संयम, विवेक एवं चरित्रबल प्राप्त करेंगे। फिर वे किसी पूँजीवादी राष्ट्रके हाथमें अपनेको बेचकर, जो नहीं करना चाहिये, उसमें प्रवृत्त कदापि न होंगे। जैसा कि उदाहरणार्थ—अणुबम बनानेवाले विज्ञानवेत्ताने अपनेको अमेरिकाके हाथ बेचकर उसका दुरुपयोग कराया। इतना ही नहीं, अनेकों विज्ञानवेत्ताओंने पूँजीवादियोंके हाथके खिलौने बनकर अर्थलोलुपताके कारण अनेक वस्तुएँ ऐसी बनायीं, जिनसे विलासिता तथा अनेक प्रकारके रोगोंकी वृद्धि हुई, जो समाजके लिये सर्वथा अहितकर है। यह भूल उन बेचारोंसे इसी कारण हुई कि शिक्षाकालमें उन्हें संयम, सदाचार तथा विवेक देखनेको नहीं मिला था, जो वास्तवमें मानवका सर्वस्व है। यह सभी जानते हैं कि विवेकके बिना निर्मोहता, अनुराग एवं निर्लोभता आदि दिव्य गुण उत्पन्न ही नहीं होते, जो लक्ष्य-प्राप्तिके मुख्य साधन हैं और संयम-सदाचारके बिना व्यवहार-शुद्धि सम्भव नहीं है, जो समाजके विकासमें मुख्य हेतु है। अत: लक्ष्य-प्राप्ति तथा सुन्दर समाजके निर्माणके लिये विवेक एवं संयमयुक्त मानवकी परम आवश्यकता है।

भगवद्बुद्धिसे बालकोंकी सेवा करनेपर भक्तोंको 'भगवान्' और विवेकके द्वारा बालकोंकी सेवा करनेसे जिज्ञासुओंको 'तत्त्वज्ञान' स्वत: प्राप्त होता है। कारण कि, मन और बालक दोनोंमें स्वभावकी एकता है। अत: संयम, सदाचार एवं विवेकके द्वारा बालकोंकी सेवा करनेसे ही अपना तथा समाजका हित हो सकता है। इस दृष्टिसे बालकोंकी सेवा ही समाजकी तथा अपनी सेवा है। बालकोंकी सेवाके द्वारा जितनी सुगमतापूर्वक सरलता आदि गुण आ जाते हैं, और किसी साधनद्वारा नहीं आ सकते। बालक वास्तवमें भगवत्-स्वरूप हैं एवं राजनीतिक दृष्टिसे राष्ट्रकी विभूति हैं। उनकी यथेष्ट सेवा ही भगवत्-पूजा तथा मानव-सेवा है। अत: बालकके स्वरूपमें भगवान्‌की सेवा करनेसे आस्तिकोंको भगवत्प्राप्ति बड़ी ही सुगमतापूर्वक हो सकती है, जो मानव-जीवनका परम तथा चरम लक्ष्य है।

भगवान् हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हमारे और भगवान्‌के बीचमें जो परदा दीखता है, दूरी दीखती है, अलगाव दीखता है, वह वास्तवमें हमारा ही बनाया हुआ है, भगवान्‌का नहीं। कारण कि भगवान् सब जगह और सब समय विद्यमान हैं। वे हमारे भीतर भी विद्यमान हैं। इतना ही नहीं, वे हमारे माने हुए मैं-पनसे भी नजदीक विद्यमान हैं। पतित-से-पतित प्राणीके भीतर भी वे ज्यों-के-त्यों विद्यमान हैं। इसलिये साधकको चाहिये कि वह अपने ही भीतर अपने प्रेमास्पदको स्वीकार करके निश्चिन्त हो जाय। जब एक भगवान्‌के सिवाय अन्य किसी भी सत्ताकी मान्यता नहीं रहेगी, तब साधक अपनेमें ही अपने प्रेमास्पदको पा लेगा। परंतु जबतक उसके भीतर 'मैं शरीर हूँ'—ऐसी मान्यता रहेगी, तबतक वह संसारके सिवाय कुछ नहीं पायेगा।

जो अपने प्रेमास्पदको अन्य व्यक्तियों, सन्त-महात्माओं, ग्रन्थों आदिमें देखते हैं, उनको अपने प्रेमास्पदसे वियोगका अनुभव करना ही पड़ता है। परंतु जो अपनेमें ही अपने प्रेमास्पदको देखते हैं, उनको अपने प्रेमास्पदसे वियोगका दुःख नहीं पाना पड़ता। अपनेसे अलग प्रेमास्पदको कितना ही अपने नजदीक दीखें, उससे वियोग अवश्य ही होगा। परंतु अपनेसे अभिन्न (अपनेमें ही) अपने प्रेमास्पदको देखनेसे प्रेमास्पदसे नित्य-सम्बन्ध हो जाता है। जबतक साधकके अन्तःकरणमें अन्यकी सत्ता रहती है, तबतक वह अपने प्रेमास्पदसे नित्य-सम्बन्धका अनुभव नहीं करता, प्रत्युत अपने प्रेमास्पदको पानेके लिये संसारमें भटकता रहता है।

साधकको कभी वास्तविक तत्त्वसे निराश नहीं होना चाहिये। कारण कि साधकमें तत्त्वप्राप्तिकी पूर्ण योग्यता, अधिकार एवं सामर्थ्य है। यह नियम है कि जो सांसारिक सुख भोग सकता है, वह संसारसे विमुख होकर आनन्दका भी अनुभव कर सकता है। जो संसारमें राग-द्वेष कर सकता है, वह राग-द्वेषका त्याग करके प्रेम भी कर सकता है। जो भोगोंमें लग सकता है, वह भोगोंका त्याग करके योग भी कर सकता है। जिसको ग्रहण करना आता है, वह त्याग भी कर सकता है।

कामनायुक्त प्राणी किसीसे प्रेम नहीं कर सकता। इसलिये कामनावाला व्यक्ति सच्चा आस्तिक नहीं बन सकता। मनुष्य सच्चा आस्तिक तभी बनता है, जब उसकी दृष्टिमें एक प्रेमास्पद (भगवान्)-के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं रहता। ऐसे सच्चे आस्तिकको भगवान्‌की कृपासे प्रेमकी प्राप्ति होती है। यद्यपि भगवान्‌की कृपा सभी प्राणियोंपर समानरूपसे है, तथापि उस कृपाका अनुभव तभी होता है, जब मनुष्य सर्वथा भगवान्‌का ही हो जाता है। भगवान्‌के सिवाय किसी अन्यकी सत्ता स्वीकार न करना ही भगवान्‌का हो जाना है।

एक भगवान्‌के सिवाय अन्य कोई भी हमारा प्रेमास्पद नहीं है। जब हम परमात्माके सिवाय अन्य किसीसे प्यार करते हैं, तब वह प्यार अपना तथा दूसरेका भी संहार करने लगता है। यह प्रेम नहीं, प्रेमोन्माद (मोह) है। अपने देशका प्रेमोन्माद ही अन्य देशका संहार कराता है। अपने सम्प्रदायका प्रेमोन्माद ही अन्य सम्प्रदायका संहार कराता है। अपनी जातिका प्रेमोन्माद ही अन्य जातिका संहार कराता है।

अगर एक भगवान्‌के सिवाय अन्य सभी इच्छाएँ मिट जायँ तो भगवान् बिना बुलाये आ जायँगे और संसार बिना मिटाये मिट जायगा। उनकी प्राप्तिके लिये भविष्यकी आशा रखना भूल है। अगर साधककी दृष्टिमें संसार सत्य प्रतीत होता है तो उसको दूसरोंकी सेवा करनी चाहिये। अगर उसका भगवान्‌में पूर्ण अपनापन नहीं है तो उसको भगवान्‌का भजन (नाम-जप, स्मरण, कीर्तन) करना चाहिये। अपने शरीर तथा संसारसे लेशमात्र भी सम्बन्ध न रहे—यही 'त्याग' है और भगवान्‌के सिवाय लेशमात्र भी किसी सत्ताको स्वीकार न करे—यही 'प्रेम' है।

जिसके भीतर कामनाएँ हैं, वह प्राणी प्रेम नहीं कर सकता। कारण कि कामनाएँ संसारकी और प्रेम परमात्माका होता है। कामनायुक्त व्यक्ति सांसारिक विषयोंका उपासक

होता है और प्रेमयुक्त व्यक्ति भगवान्‌का उपासक होता है। संसारका उपासक परतन्त्र हो जाता है और भगवान्‌का उपासक स्वतन्त्र हो जाता है।

सत्-तत्त्वकी प्राप्ति किसी क्रियासे नहीं होती। कारण कि प्रत्येक क्रिया असत्‌में ही होती है, जबकि सत्-तत्त्वकी प्राप्ति असत्‌के त्यागसे होती है। कामनाओंका अन्त होनेपर असत्‌का भी त्याग हो जाता है और सत्-तत्त्वकी अभिलाषा जाग्रत् हो जाती है। सत्-तत्त्वकी अभिलाषा जाग्रत् होनेपर भूतकालकी स्मृति नहीं होती, वर्तमानमें सत्-तत्त्वको पानेकी व्याकुलता जाग्रत् होती है और भविष्यकी आशा मिट जाती है। सत्-तत्त्वकी अभिलाषा सम्पूर्ण कामनाओंको मिटाकर सत्-तत्त्वकी अनुभूति करा देती है।

जिनको हम सांसारिक सुख कहते हैं, वे सब वास्तवमें मनकी थकावट हैं। मनकी थकावटसे होनेवाला सुख तो मिट जाता है, पर पारमार्थिक आनन्द मिटता नहीं। वह आनन्द ही हमारा स्वरूप है। मनकी थकावट हमारा स्वरूप नहीं है।

जब संसारके सभी सुख (सुखासक्ति) मिट जाते हैं, तब उस परमसुखका अनुभव होता है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता—**'यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः'** (गीता ६।२२)। उस परमसुखका अनुभव होनेपर सभी कामनाओंका नाश हो जाता है तथा किसी प्रकारकी कोई कमी शेष नहीं रहती—**'रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते'** (गीता २।५९)।

यदि मनुष्य दुःखसे बचना चाहे तो वह सुखकी इच्छाको मिटा दे। यदि रोगसे बचना चाहे तो भोगकी इच्छाको मिटा दे। यदि अपमानसे बचना चाहे तो सम्मानकी इच्छाको मिटा दे। यदि शोकसे बचना चाहे तो हर्षकी इच्छाको मिटा दे। तात्पर्य है कि दुःखका निर्माण स्वयं हमने किया है। हमारी इच्छाके बिना कोई हमें दुखी, पराधीन नहीं कर सकता।

एक मार्मिक बात है कि मनुष्यको जिस वस्तुकी आवश्यकता है, उसको प्राप्त करनेकी सामर्थ्य उसमें विद्यमान है। तात्पर्य है कि मनुष्य जो कुछ कर सकता है, उसीसे उसकी आवश्यकताकी पूर्ति हो सकती है। संसार भी मनुष्यसे वही आशा करता है, जो वह कर सकता है। भगवान् भी वही आज्ञा देते हैं, जो वह कर सकता है। मनुष्य जो कर सकता है, उसको न करना ही अकर्तव्य है। जबतक मनुष्यकी वास्तविक आवश्यकताकी पूर्ति नहीं होती, तबतक उसका करना समाप्त नहीं होगा, वह कुछ-न-कुछ करता ही रहेगा। कारण कि करना साधन है, साध्य नहीं। साध्यकी प्राप्ति होनेपर साधन शेष नहीं रहता अर्थात् आवश्यकता शेष न रहनेपर करना भी शेष नहीं रहता, मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।

परमात्माकी अनन्त शक्ति प्राणिमात्रको निरन्तर अपनी ओर खींचती रहती है। इसीलिये कोई भी परिस्थिति निरन्तर नहीं रहती। मनुष्यकी ममता कहीं भी स्थायी नहीं रहती। उसका प्रत्येक वस्तु तथा व्यक्तिसे निरन्तर सम्बन्ध-विच्छेद होता रहता है। परमात्माकी वह अनन्त शक्ति न तो मनुष्योंपर शासन करती है, न उनकी स्वतन्त्रता छीनकर उनको पराधीन बनाती है। यह नियम है कि जो वस्तु जिससे उत्पन्न होती है, अन्तमें उसीमें विलीन होती है, तभी पूर्णता होती है। जीव परमात्मासे अलग हुआ है, अतः जबतक वह परमात्मामें विलीन नहीं होगा, तबतक पूर्णता नहीं होगी, वह भटकता ही रहेगा। इसलिये परमात्माको छोड़कर अन्य वस्तु, व्यक्ति, क्रिया, अवस्था, परिस्थिति आदिकी ममता-कामनामें फँसना व्यर्थ है। उनकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करना व्यर्थ चेष्टा है। जीवकी स्वाभाविक गति परमात्मामें विलीन होनेकी ही है। जब हम अपनी स्वाभाविक गतिसे विमुख होकर अन्य वस्तु, व्यक्ति आदिके सम्मुख हो जाते हैं, तब भगवान्‌की कृपा उस वस्तु, व्यक्ति आदिसे वियोग करा देती है। जबतक हमारा परमात्मासे योग नहीं होगा, तबतक प्रत्येक संयोगका वियोग होता रहेगा—यह नियम है। संसारमें होनेवाला परिवर्तन निरन्तर यह शिक्षा दे रहा है कि तुम मेरेमें मत फँसो। मैं तुम्हारा लक्ष्य नहीं हूँ। तुम्हारा लक्ष्य परमात्मा है, जो निरन्तर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

श्रीरामकथा—अनन्त और सदा नवीन

(श्रीसचिनजी नाईक)

प्रभु रामका और हमारा परिचय कब हुआ, यह भी ठीकसे याद नहीं, बहुधा समझने, जाननेकी आयुसे पहले ही माँ-बाबाकी कहानियोंमेंसे हुआ होगा। आयुमें थोड़े बढ़नेके बाद टीवीपर रामायण सीरियल शुरू हुआ और मुझे याद है कि गाँवका इकलौता टीवी सेट जिनके घरमें था, उनके यहाँ जाकर हम ऐपिसोड्स देखते थे।

आज भी रामनवमीका दिन आता है तो मुझे बचपनकी गाँवकी रामनवमी याद आ जाती है। उन दिनों गर्मीके शुरुआती समयमें हमने शायद छतपर सोना शुरू किया होगा और जैसा कि गीतरामायणमें वर्णन किया गया है, वैसी सुगन्धयुक्त उष्ण वायु चलने लगती। हमारे घरके सामनेवाला पीपल नयी पत्तियोंसे खिल उठता और शामके समय सुनहरी किरणोंमें सरसराती, चमकनेवाली उन पत्तियोंसे खुद सुवर्ण अश्वत्थ बन जाता।

गाँवके दो छोरपर दो राममन्दिर थे, घरके पासवाला राममन्दिर, वहाँपर शामको स्पीकरपर हरिहरनकी हनुमान-चालीसा सुनायी देती, उसके बाद होनेवाली आरती, ढोल-नगाड़ों, मंजीरोंकी आवाज और खेतोंमें दिनभर चरकर गाँव लौटनेवाली गौमाताओंके हुँकारनेकी ध्वनि सुनायी देती। आज भी जब हरिहरनजीकी हनुमान-चालीसा सुनता हूँ, मन गाँवकी उसी शाममें चला जाता है।

इस मन्दिरमें रामनवमीके दिन दोपहर १२ बजेके आस-पास रामजन्मका उत्सव होता था। भावार्थ रामायणसे रामजन्मका अध्याय पढ़ा जाता, वह कथा और कथाके बाद मिलनेवाली पँजीरी—इनपर हमारा विशेष ध्यान हुआ करता था। उस मन्दिरमें एक सफेद दाढ़ीवाले, सात्त्विक स्वभावके बाबाजी रहा करते थे, वे मुझे थोड़ी और पँजीरी देते थे और वह सुगन्धित स्वादिष्ट पँजीरीका ग्रास लेकर हम खुशी-खुशी घर आ जाते थे।

वार्षिक हरिनाम-सप्ताहके दौरान हर शाम भावार्थ रामायण होती थी और मैं वह कथा सुननेके लिये अति उत्सुकतासे प्रतीक्षा करता था। मैंने वहाँ कई रामकथाएँ सुनीं, लेकिन आज भी मुझे सुग्रीव-बाली और दुन्दुभी राक्षसकी कहानी स्पष्ट रूपसे याद है।

गाँवमें समय-समयपर 'रामलोक' आते रहते थे। महाराष्ट्रमें प्रचलित ये बड़ी सुन्दर प्रथा है—श्रीरामके चौदह वर्षके वनवासके स्मरणमें कुछ भक्त लोग चौदह दिनोंके लिये एक गाँवसे दूसरे गाँवकी यात्रा करते थे। अपने वनवासके दौरान राम, लक्ष्मणके वल्कल पहननेकी याद दिलानेके रूपमें, रामलोक जूटकी बोरीके कपड़ेसे बने वस्त्र पहनकर व्रतस्थ रहते थे। हम उन्हें देखनेके लिये और सामनेवाली श्रीरामकी छविको प्रणाम करनेके लिये भागदौड़ किया करते थे। बादमें जब थोड़ा समझने लगे और पढ़ना शुरू किया तो रामकी पहचान और मजबूत होने लगी, रामविजय ग्रन्थ, कल्याण पत्रिकाके लेख, गीत रामायण, समर्थ रामदास स्वामीके राम, कबीर, गोस्वामी तुलसीदास और अन्तमें स्वयं वाल्मीकिके राम।

अँधेरेमें या किसी एकान्त स्थानपर जानेका समय आता तो राम ही सहारा थे, जब कोई बीमार पड़ता तो रामरक्षा आधार बन जाती, मन व्याकुल होता है तो ***'हमारे साथ श्रीरघुनाथ तो किस बातकी चिन्ता'***, भविष्यकी चिन्ता हो तो ***'जानकी नाथ सहाय करें, जब कौन बिगाड़ करे नर तेरो'*** और जब संसारके सूरजके तापसे व्यथित हों तो तरुवरकी छाया बनकर वही राम उपस्थित थे।

जो राम समय आनेपर 'रणकर्कश' बन जाते हैं, वे ही राम लोकाभिराम सबके प्यारे रामभद्र भी हैं, राम सबके—अयोध्यावासियोंके, ऋषिगणोंके, निषाद, केवट, शबरीके, वानर-ऋक्ष पशुजातियोंके, जटायु और काकभुशुण्डी-जैसे पक्षियोंके और विभीषण-जैसे राक्षसके भी।

रामकथापर कई संस्कृत कविताएँ और नाटक रचे गये, देशी-विदेशी भाषाओंमें कई ग्रन्थ, पुस्तकें लिखी गयीं, कितने ही गीत और कविताएँ रची गयीं। कितनी लोककलाएँ फलीं-फूलीं, कितनी मूर्तियाँ और चित्र बने, कितने धारावाहिक, फिल्में-एनिमेशन बने। फिर भी यह सहस्रशीर्ष पुरुषोत्तम दस अंगुल बचा ही रहता है, रामकी कथा समाप्त नहीं होती, उसकी मिठास फीकी नहीं होती। यह अनन्त और सदा नवीन है। जैसा कि वाल्मीकि रामायणमें स्वयं ब्रह्माजीने कहा है—

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

जबतक इस धरतीपर पर्वत और नदियाँ हैं, तबतक लोगोंके बीच रामायणकी कथा सुनायी जाती रहेगी।

त्यागसे शान्ति तथा कल्याण-प्राप्ति

(दण्डी स्वामी श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती)

धन, सम्पत्ति, शक्ति, यश, पद, सौन्दर्य, ज्ञान तथा त्यागसे व्यक्तित्वमें आकर्षण और निखार आता है। अभावग्रस्त दीन-दुखियोंके हितार्थ धनका त्याग करके दिव्यता, शान्ति तथा आनन्दकी प्राप्ति होती है। असहायजनोंके रक्षण तथा अन्याय, अत्याचारका विरोध करनेमें शक्तिकी सार्थकता है। इससे लोक-परलोक दोनों सँवरते हैं।

यो वै सामर्थ्ययुक्तश्च नोपकारं करोति वै।
तत्सामर्थ्यं भवेद् व्यर्थं परत्र नरकं व्रजेत्॥

(शिवपुराण)

जो समर्थ होकर भी दूसरोंका दु:ख दूर नहीं करता है, उसकी सामर्थ्य बेकार हो जाती है तथा परलोकमें नरककी प्राप्ति होती है। शास्त्रप्रतिपादित ईश्वरीय आज्ञाओंका पालन करते हुए दयार्द्र चित्तसे सर्वोपकार करनेसे सुयशकी प्राप्ति होती है। अपने अधिकार-क्षेत्रका सम्यक् ज्ञान रखकर पदका सदुपयोग करके ही समाजको समुन्नत तथा देशको विकसित किया जा सकता है। जितना शरीरका बाह्य सौन्दर्य आकर्षित करता है, उससे भी अधिक व्यक्तिका आन्तरिक सौन्दर्य (अन्त:करणकी दिव्यता) समीप आनेवालोंको आकर्षित करता है। पूर्वजन्ममें प्राप्त धन किसीको भी दूसरे जन्ममें नहीं मिलता, परंतु ज्ञानका संस्कार प्राप्त होता है, अत: प्राप्त ज्ञानका आचरण करते हुए, कुमार्गमें भटके हुओंका मार्गदर्शन करनेसे ज्ञान सार्थक होता है। बादल वर्षा करके, वृक्ष फल देकर तथा सत्पुरुष परहितके लिये जीवन समर्पित करते हुए प्राप्त सुख-संसाधनोंका सर्वहितार्थ त्यागकी प्रेरणा देते हैं।

वृक्ष कबहुँ नहिं फल भखै नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन्ह धरा शरीर॥

संसारमें व्यक्ति त्यागी बनकर (नंग-धड़ंग) आते हैं तथा महात्यागी बनकर (अत्यधिक प्रिय देह तथा सर्वस्व भी त्यागकर) चले जाते हैं, अत: जीवनमें स्वार्थी तथा लोभी बनकर धनसंचयकी प्रवृत्ति नहीं रखनी चाहिये।

एक बार गोरखनाथजी अपने गुरुदेव मत्स्येन्द्र-नाथजीके साथ कहीं जा रहे थे। रास्तेमें सोनेकी ईंट मिल गयी। मत्स्येन्द्रनाथजीने यज्ञ तथा साधुसेवा करेंगे—ऐसा कहकर उसे गोरखनाथकी झोलीमें रख लिया। घोर जंगलसे निकलते समय कहने लगे, 'गोरख! घने जंगलोंमें डाकू-लुटेरे रहते हैं, जो लोगोंके धन तथा प्राण दोनों ले लेते हैं।' गोरखनाथजीने कहा, 'हाँ, गुरुदेव'। कुछ आगे जानेपर जंगल और घना हो गया, फिर बोले, 'गोरखनाथ! जंगल और भी घना होता जा रहा है, मुझे डर लग रहा है।' गोरखनाथजी समझ गये, सदैव निश्चिन्त होकर घोर जंगलोंमें विचरण तथा निवास करनेवाले गुरुदेव सोनेकी ईंटके कारण घबड़ा रहे हैं। उन्होंने ईंट निकालकर फेंक दी। आगे जानेपर मत्स्येन्द्रनाथद्वारा फिर डरकी बात कहनेपर कहा, 'गुरुदेव! आप निश्चिन्त रहें, डरको मैंने पीछे छोड़ दिया है।' मत्स्येन्द्रनाथने कहा—तू मेरा शिष्य होकर भी गुरुवत् है; सन्तोंका धनासक्त होना पतनकारक है।

नाशवान् वस्तुएँ स्वत: छूट जायँगी या तो हम ही उन्हें छोड़कर इस जगत्से चले जायँगे। अत: इनसे परोपकार करते हुए जीवनमें धर्मसंचय करना ही बुद्धिमत्ता है। जिनका जीवन धर्म तथा मोक्षप्रधान न होकर अर्थ तथा कामप्रधान होता है। वे पुनर्जन्मको नहीं मानते, ऐसे लोग स्वसुख तथा भोग-सामग्रियोंकी प्राप्तिके लिये सम्पूर्ण जीवन लगानेवाले, स्वार्थके कारण दूसरोंको मिलनेवाले दु:खपर विचार न करनेके कारण अधोगति प्राप्त करते हैं।

विश्वमें कई मतावलम्बी पुनर्जन्मको नहीं मानते हैं। हम सनातनधर्मियोंकी पुनर्जन्मकी मान्यता जीवनको घोर नैराश्यसे दूरकर जीवनमें नवीन आशा एवं उत्साहको बढ़ाते हुए, कर्मठ कर्मयोगी बनाती है, जिससे मनुष्योंमें यह भावना प्रबल होती है कि मैं धर्मग्रन्थोंमें बताये हुए शुभ कर्मोंको करके और अधिक आनन्द और सुख-भोगोंको प्राप्त कर लूँगा। पुनर्जन्मको न माननेवालोंको भी यह विचार करना चाहिये कि जीवनमें सदाचार एवं सादगीको प्रतिष्ठित करके नि:स्वार्थ प्रेमपूर्वक सर्वहित करनेसे शान्ति एवं सन्तोषकी प्राप्ति एवं देवत्वका विकास तो होना निश्चित ही है।

कभी यह नहीं सोचना चाहिये कि मुझे किसने क्या दिया है, बल्कि यह सोचो कि हमने किसे क्या दिया है।

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीमें 'विश्वको विज्ञानकी देन' विषयपर बोलते हुए डॉ० राधाकृष्णन्‌ने कहा था कि विज्ञानकी मददसे हम पक्षियोंसे भी अच्छा आकाशमें उड़ना सीख गये, हवाई जहाज बना लिये; मछलीसे अच्छा पानीमें तैरना सीख गये, समुद्री जहाज बना लिये, परंतु अभी हम धरतीपर रहना नहीं सीख पाये। **जिस दिन मनुष्य धरतीपर ठीकसे रहना सीख जायगा, उस दिन विश्वको विज्ञानकी सबसे बड़ी उपलब्धि होगी।**

प्रेम, त्याग तथा सेवा—इन तीनसे व्यक्ति उपयोगी होता है। प्रेमसे ईश्वरके लिये, सेवासे संसारके लिये तथा त्यागसे स्वयंके लिये उपयोगी होता है। त्याग जीवनका परम कर्तव्य है, त्यागसे व्यक्ति किसी दूसरेपर नहीं स्वयंपर उपकार करता है; क्योंकि त्यागसे जीवनमें शान्ति प्राप्त होती है। गीतामें बताया गया है—**'त्यागात् शान्तिरनन्तरम्।'** आदत बुरी सुधार लो बस हो गया भजन। जीवन दोष-दुर्गुणोंके त्यागनेसे जितना दिव्य बनता है, उतना तो ईश्वरकी उपासनासे भी नहीं बनता। यदि हमने अपने हृदयको राग-द्वेषसे रहित बना लिया, अपनी वाणीको झूठ, छल-कपट तथा कठोरतारहित कर लिया तथा शरीरको हिंसा, चोरी तथा व्यभिचारशून्य बना लिया तो हमने ईश्वरकी सच्ची पूजा कर ली।

रागाद्यपेतं हृदयं वागदुष्टानृतादिभिः।
हिंसादिशून्यकायश्च ह्येतदीश्वरपूजनम्॥

आपने बहुतोंको यह कहते सुना होगा कि 'जीवन एक संघर्ष है' इसका तात्पर्य लोभ या स्वार्थके वशीभूत होकर पद, धन, अधिकार एवं सुख-वैभवकी प्राप्तिके लिये लड़ना नहीं है, बल्कि अपने अन्दर स्थित दोष-दुर्गुणोंको दूर करनेके लिये अपने मन, बुद्धि एवं इन्द्रियोंसे लड़ना है। महाभारतमें अपने अन्दर विराजमान छः शत्रुओं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और मदको जीतनेकी प्रेरणा दी गयी है। इन भीतरी शत्रुओंको जीत लेनेवाले पुरुषके लिये संसारमें कोई भी शत्रु शेष नहीं रह जाते।

अरयः षड् विजेतव्या नित्यं स्वदेहमाश्रितः।
कामक्रोधौ च लोभश्च मानमोहौ मदस्तथा॥

ये षड् विकार ज्ञानी तथा अज्ञानी दोनोंमें होते हैं, ज्ञानीमें विवेक होनेके कारण पानीमें खींची हुई लकीरकी भाँति तुरन्त मिट जाते हैं, परंतु अज्ञानीमें पत्थरकी लकीरकी भाँति स्थायी होनेके कारण उसे दुःख देते रहते हैं।

सुख और दुःख दोनों शिक्षाप्रद हैं, परंतु सुखसे भी ज्यादा दुःखसे शिक्षा मिलती है। प्रबल मानसिक या शारीरिक घात-प्रतिघात तथा दूसरोंद्वारा की गयी प्रशंसा या निन्दासे मनुष्यका जीवन परिवर्तित होता है, विचार बदलते हैं। यह परिवर्तन जब स्थायी होता है, तब उसका चरित्र-निर्माण कर देता है। किन्हीं विशेष अवसरोंमें लोभी भी दानी, क्रोधी भी क्षमाशील, कायर भी बहादुर एवं दुष्ट व्यक्ति भी सज्जनताके कार्य कर जाते हैं। नाम, धन, पद, अधिकारकी प्राप्ति तथा स्वार्थसिद्धिके लिये तो अधिकांश लोग कार्य करते हैं, परंतु जो लोग निःस्वार्थतापूर्वक सर्वहितके कार्य करते हैं, उन नरश्रेष्ठका जीवन धन्य है। सच्चरित्रता सबसे श्रेष्ठ है, जिसका चरित्र सदैव एवं सब अवस्थाओंमें श्रेष्ठ है, वही महान् पुरुष है।

जिसमें भोगासक्ति नहीं जिसके मन में त्याग।
परम शान्ति को प्राप्त हो वही मनुज बड़ भाग॥

सुख भोगनेकी चाहमें व्यक्ति विवेकशून्य होकर स्वार्थसे अन्धा हो जाता है, दूसरोंकी सुख-सुविधाओंका ध्यान रखनेवाला सबका दिल जीतकर सबके हृदयोंमें राज्य करता है। निःस्वार्थता एवं परोपकारिता ईश्वर और मृत्युको सदैव याद रखनेसे बढ़ती है। परिवार तथा संसारमें धायकी तरह रहो, जिससे सब छोड़ते समय दुःख न हो। धाय मालिकके बच्चोंको अपने बच्चोंकी तरह बड़े लाड़-प्यारसे पालती हैं, परंतु नौकरीसे हटानेपर छोड़कर चली जाती है, उसे उन्हें छोड़नेपर जरा भी दुःख नहीं होता; क्योंकि उनमें ममता एवं आसक्ति नहीं होती है।

द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च।
ममेति बध्यते जन्तुः न ममेति प्रमुच्यते॥

(गरुडपुराण एवं श्रीमद्देवीभागवत)

दो शब्दोंसे ही बन्धन एवं मोक्ष है—'मेरा है' यह माननेसे बन्धन, 'मेरा कुछ नहीं सब कुछ ईश्वरका है'—यह माननेसे मोक्ष होता है। हमलोग प्रतिदिन आरती करते समय भगवान्‌के सामने कहते हैं—

जो कुछ है सो तेरा प्रभु सब कुछ है तेरा।
तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा॥

भगवान्‌से कह तो देते हैं कि सब कुछ आपका है, परंतु अपना मानते हैं, यह ईश्वरके प्रति कपट भाव है। मनसे मान लो कि सब कुछ भगवान्‌का है, इससे निर्लिप्तता बढ़ती है, जिससे कल्याण होता है। जगत्‌को सराय एवं स्वयंको मुसाफिर समझो।

रागरूपी लकड़ीको जलानेके लिये वैराग्य अग्निके समान है। लकड़ी जल जानेपर अग्नि स्वतः बुझ जाती है, वैसे ही वैराग्य रागको मिटाकर स्वतः मिट जाता है। जो हमारे अनुकूल होते हैं, उनसे राग एवं जो हमारे प्रतिकूल होते हैं, उनसे द्वेष स्वतः हो जाता है। दोष मालूम होनेपर भी त्याग न करना राग है तथा गुण मालूम होते हुए भी ग्रहण न करना द्वेष है। राग त्याग नहीं होने देता तथा द्वेष प्रेम नहीं होने देता, क्योंकि त्याग एवं प्रेमसे राग-द्वेष मिट जाते हैं। जीवनमें सभी दोष राग-द्वेषसे एवं सभी अच्छाइयाँ प्रेम एवं त्यागसे आती हैं।

यौवनं जीवितं चित्तं छाया लक्ष्मीश्च स्वामिता।
चञ्चलानि षडेतानि ज्ञात्वा धर्मरतो भवेत्॥

जवानी, जीवन, चित्त, छाया, सम्पत्ति और स्वामित्व—ये छः चंचल हैं अर्थात् स्थिर रहनेवाले नहीं हैं। ऐसा जानकर धर्मके मार्गपर चलना चाहिये। आत्मकल्याण चाहनेवालोंको नाशवान्‌से प्रीति न बढ़ाकर अहंकारविहीन विनम्र जीवन जीते हुए मैं भगवान्‌का हूँ, वे मेरे हैं, यह भाव मनमें सदैव रखते हुए निर्भय हो जाना चाहिये।

तनमद धनमद राजमद अंतकाल मिटि जाय।
जिसके मद तेरो प्रभु तेहि यम काल डिराय॥

धन तथा सुख भोगोंकी चाहसे स्वार्थान्धता बढ़ती है। कपटी, कायरों तथा क्रूर लोगोंके कारण कई देशोंमें खूनकी नदियाँ बहीं, जिससे मानवता शर्मसार हुई है। कई देश गुलाम बनाये गये, आतंकवादसे मानवता रोयी, हिरोशिमा तथा नागासाकी-जैसे भीषण विनाशकारी युद्ध हुए हैं। इनसे सम्पूर्ण विश्वको शिक्षा लेते हुए सबके सुख-शान्तिकी प्राप्तिके लिये मानवमात्रका कर्तव्य है कि जो धन, पद एवं अधिकार किसीके आँसुओंसे भीगा, किसीके रक्तसे सना अथवा आतंकवादका जनक होकर प्राप्त हो, ऐसे ऐश्वर्यमय जीवनको जीकर घोर नरकोंके अन्धकारमय गर्तमें गिरकर अगले कई जन्म बिगाड़नेसे श्रेयस्कर है कि सद्विचारोंद्वारा सर्वहितकारी सत्कर्मोंको बढ़ाकर अभावग्रस्त जीवन जी लिया जाय। लोक-कल्याणको आत्मकल्याणसे अधिक महत्त्व देना सच्ची महानता है। सांसारिक सभी सम्बन्धी एक-न-एक दिन छूट ही जाते हैं, परंतु सत्य जिसकी माँ है, ज्ञान पिता है, धर्म भाई, दया मित्र है, शान्ति पत्नी तथा क्षमा जिसका पुत्र है, ऐसे इन छः‌को जिन्होंने अपने सम्बन्धी बना लिया, ये कभी भी उसको नहीं छोड़ते उसका कल्याण करते हैं—

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा।
शान्ति पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः॥

सभी कामना, तृष्णा, वासना तथा अहंकारका त्याग ही सच्चा त्याग है। कर्मफलका त्याग करनेवाले मनुष्योंके कर्मका अच्छा, बुरा तथा मिला हुआ तीन प्रकारका फल मरनेके बाद अवश्य प्राप्त होता है, परंतु कर्मफलका त्याग कर देनेवाले मनुष्योंके कर्मोंका फल किसी कालमें भी नहीं होता है—

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्॥

(गीता १८। १२)

जीवनमें अर्थ एवं अधिकारको नहीं, त्याग एवं कर्तव्यको महत्त्व देना चाहिये। मृत्युके बाद धन यहीं रह जाता है, अतः धनसे धर्म-सम्पादन करनेवाला बड़ा बुद्धिमान् है। विदेश-यात्रा करनेवाले व्यक्ति यहाँसे अपने देशका धन वहाँ नहीं ले जा सकते हैं, जिस देशमें जाना है, वहाँकी करेंसीमें परिवर्तित करानेपर वह विदेशमें प्राप्त हो जाता है। वैसे ही धनसे धर्म उपार्जित करनेपर धर्म धन-वैभवके रूपमें प्राप्त हो जाता है। धनसे धर्मका महत्त्व अधिक है; क्योंकि धन जड़ है, जबकि धर्म चिन्मय है। धनकी रक्षा हम करते हैं जबकि धर्म हमारी रक्षा करता है। महाभारत कहता है, जो धर्मकी रक्षा करता है, वह रक्षित धर्म उसकी रक्षा करता है। '**धर्मो रक्षति रक्षितः**' (महाभारत)। ईशावास्योपनिषद् सभी प्राणियोंमें परमात्म-दर्शन करते हुए लोभ त्यागकर सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देता है—

ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

सूर्यविद्या

(श्रीरामजी शास्त्री)

वैदिक संस्कृतिका मूलाधार मन्त्रद्रष्टा ऋषि एवं ऋषिकाएँ हैं। ऋषिको कवि एवं मुनि नामसे भी सम्बोधित किया गया है। ऋषिका अर्थ प्राणवान् और कवि, मुनिका अर्थ अन्तर्मुखी, क्रान्तदर्शी, अन्तःचेतनावान्, आन्तरिक ब्रह्माण्डसे साक्षात्कार-प्राप्त, प्रज्ञावान् आदि है। ऋग्वेदके सभी १० विभागों—मण्डलोंमें १०२८ सूक्त हैं और मन्त्रद्रष्टा ऋषि-ऋषिकाओंकी संख्या २९६ है। ऋग्वेदमें ब्रह्माण्ड-दर्शन, ब्रह्माण्ड-उत्पत्ति, सविता- प्रकटीकरण, अनेक सूर्योंकी रचना और सृष्टि-सृजनका सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम वर्णन बहुत ही सुन्दर है। यह वर्णन वर्तमान भौतिकविज्ञानके मापदण्डोंपर भी खरा उतरता है।

परमव्योम अर्थात् महाकाशमें ब्रह्माण्ड एवं सृष्टि-रचनाका वर्णन ऋग्वेदके नासदीय सूक्त, पुरुष सूक्त, विश्वकर्मा सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, प्रजापति सूक्त आदिमें मिलता है। ऋग्वेदके सूक्तोंमें परमव्योम शब्द नये रहस्यलोकमें ले जाता है। अर्थात् हमें दिखायी देनेवाले आकाश (व्योम)-के अलावा भी एक महाआकाश है। सूक्तोंमें स्पष्ट किया है कि परमव्योममें अप् या आप (सलिल, जल)-का महासमुद्र रहा। चारों ओर अनन्त अप् रहा। उस समय प्रकाश भी नहीं था और अन्धकार भी नहीं था। अव्यक्तसे व्यक्त हुआ। उसने अपनी इच्छाशक्तिसे सृष्टिकी प्रेरणा की (नासदीय सूक्त)। पुरुष सूक्तमें अनेक ब्रह्माण्डोंके सृजनका उल्लेख है। विश्वकर्मा सूक्तमें रहस्योद्घाटन किया है कि सर्वप्रथम द्यावापृथिवीका सृजन किया गया। हिरण्यगर्भ सूक्तने स्पष्ट किया है कि इस सृष्टिके सृजनमें पहले हिरण्यगर्भ परब्रह्म परमात्मा विद्यमान रहा। ऋग्वेदके पाँचवें मण्डलके ६२वें सूक्तमें सृष्टिकल्पकालको उषाकाल नामसे सम्बोधित किया है। यह सूक्त परमाणु एवं ऊर्जाके गूढ़ज्ञानसे सम्बन्धित है। सूक्तमें द्युलोक और सूर्यमण्डलमें आप-जल-सलिल-अप्में अवस्थित घोषित किया है। महर्षि दीर्घतमाके अस्यवामीय सूक्तमें परमव्योममें महासृष्टि-सृजनका रहस्य उद्घाटित किया गया है। महासृष्टिकी पूर्वावस्थामें केवल एक तत्त्व (अव्यक्त व्यापक सूक्ष्म प्रकृति तत्त्व आपः) विद्यमान रहा। यह महासृष्टिकी पूर्वावस्थाका निरीक्षण कर रहा था। सृष्टिमें सात लोक—भूः, भुवः, स्व; जन, तपः, महः एवं सत्य हैं। सूक्तमें महाप्रकृतिको कामदुघा नाम दिया गया है। इसका वत्स (पुत्र) प्राणरूप सूर्य है। अस्यवामीय सूक्तमें परमव्योममें अक्षरको अविनाशी कहा है। अदिति अखण्ड अक्षय ऊर्जा है। यह स्मरण रहे कि अस्यवामीय सूक्तके मन्त्रद्रष्टा ऋषि दीर्घतमाने 'शून्य'-का आविष्कार किया। महर्षि दीर्घतमाके सूक्तमें परमव्योमन्में 'ॐ'की ध्वनिका उल्लेख है। आदिसूर्य सवितामें 'ॐ'का मधुर नाद हुआ और सूर्यों—ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति हुई। सूक्तने कहा है कि गोरूपी अक्षय ऊर्जा है। ब्रह्माण्डकी समस्त नीहारिकाओंके समापनके बाद अथवा पार महा ब्रह्माण्डीय ऊर्जावाला ब्रह्मलोक अथवा गोलोक है। सविता देवताने अग्नि आदि देवोंकी शक्तियोंके माध्यमसे नीहारिकारूपी भट्टीका निर्माणकर सम्पूर्ण सृष्टिको प्रसव दिया। सृष्टिके मूलकणोंसे सृजनशक्ति प्राप्तकर ब्रह्माण्डीय ऊर्जा तत्त्वसे पदार्थका निर्माण किया। साथ ही नीहारिका केन्द्रसे सूर्योंकी उत्पत्ति हुई। परमव्योममें चारों दिशाओंमें बिखरे प्रकाशित सभी तारे सूर्य हैं। ये सूर्य आकाशगंगाके केन्द्रसे निकले हैं। उनमेंसे ही एक ऊर्जाका महासमुद्र हमारा सूर्य है। हमारा सूर्य छः अरब वर्षोंसे निरन्तर ऊर्जा एवं प्रकाश दे रहा है, लेकिन ऊर्जामें कमीका कोई संकेत नहीं है।

ऋग्वेदके १०वें मण्डलके ७२वें सूक्तमें कहा गया है कि 'प्रत्येक सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम अंशमें अनन्त शक्ति और ऊर्जाका भण्डार है। सृष्टिका आरम्भ प्रकृतिकी साम्यावस्था, शक्तिसमूह है। वेदके व्योमवादमें दो प्रकारके व्योम हैं—परमव्योमन् और अपरव्योमन्। परमव्योमन् अमृत देवयोनि है, जहाँ सभी देवोंकी उत्पत्ति होती है। उसका स्थान द्यौ है। परमव्योमन् परमेष्ठी सूक्ष्मसे सूक्ष्म चैतन्य रूपमें प्रकट होते हैं। यह चैतन्य दिव्य प्रकाश अनन्त विपुल ऊर्जा शक्तिका महाभण्डार है। परमेष्ठीके अव्यक्तसे व्यक्त होते ही महासृष्टि, महाब्रह्माण्डों एवं अनेक सूर्योंकी उत्पत्ति होती है। वेद विश्वका प्रथम और अन्तिम सनातन ज्ञान ब्रह्मविद्याका ग्रन्थ है, जिसमें अनेक

सूर्योंके ब्रह्माण्डमें विद्यमान होनेकी घोषणा की गयी है। वर्तमान भौतिक विज्ञानने भी इसे स्वीकारा है।

परमेष्ठी ज्येष्ठ ब्रह्मका सूक्त ऋग्वेदसे लेकर अथर्ववेदमें है। वेदमें परव्योममें सर्वप्रथम दिव्य प्रकाश बिखेरते सविता देवताका वर्णन है। सविता देवताको 'आदिसूर्य' भी कहा गया है। शाब्दिक रूपसे सूर्य और सविताका अर्थ प्रसव देनेवाला, नवरचना करनेवाला है। मार्तण्ड उत्पत्ति सूक्तमें आठवें सूर्य मार्तण्डकी उत्पत्तिका वर्णन बहुत ही काव्यात्मक है। सूर्य देवताकी ऊर्जाको सतत अक्षय ऊर्जाका महासागर कहा गया है। मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंने वेदमें स्पष्टरूपसे कहा है कि सूर्यमें अप्-आपः (जल)-के सारतत्त्वका सार दहनशील है। इसके सारका सार पुनः दहनशील (जलना) है। वैज्ञानिक रूपसे जल हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन दो तत्त्वोंका मिलन है। जलके सारका सारतत्त्व हाइड्रोजन और उससे सृजित हीलियम धूम्र अथवा धूम (गैस) सूर्यमें जल रहा है। अतः वेदके ऋषि अद्वितीय, अतुल्य, विलक्षण वैज्ञानिक रहे।

ऋग्वेदके अष्टम मण्डलके ७२वें सूक्तमें कहा गया है कि परमेष्ठीने सूर्यमें अखण्ड ऊर्जाका खजाना रखा हुआ है। वैदिक ऋषियों वसिष्ठ और भारद्वाजने लम्बे मनन-चिन्तनके बाद सौर ऊर्जाके गूढ़ रहस्यको प्राप्त किया। वेदमें सौर ऊर्जाके लिये **सौर्यः घर्मः** शब्दको काम लिया है। ऋग्वेदके अनुसार सूर्यकी किरणोंसे सात प्रकारकी ऊर्जा (सप्तपदी) प्राप्त की जा सकती है। इस ऊर्जासे अन्न (इष्) और ऊर्ज (ऊर्जा) दोनों प्राप्त होती हैं। ऋग्वेद और यजुर्वेदकी ऋचाओंके अनुसार सूर्य किरणोंमें विद्युत् चुम्बकीय प्रवाह भी है। ऋग्वेदमें सूर्यमण्डलमें कुछ काले चिह्नों (विज्ञानके ब्लैकहोल)-का वर्णन है। **'सूर्यस्य चक्षू रहसैत्यावृतम्।'** (ऋग्वेद १.१६४.१४)।' सूर्य आकर्षण शक्तिसे सौरमण्डलको रोके है, **'सूर्येण उत्तभिता द्यौः'** (ऋग्वेद १०.८५.१)। सूर्यकी किरणें ही पदार्थको रंग देती हैं, ये **'त्रिसप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।'** (अथर्ववेद १.१.१)

सूर्य और वैश्वानर अग्नि-सम्बन्धपर ऋग्वेदके १०वें मण्डलका ८८वाँ सूक्त प्रकाश डालता है। हिरण्यगर्भमें वैश्वानर अग्नि कार्यरत है। यह वैश्वानर अग्नि सूर्यको कार्यमें लगाती है। सूर्यमें अग्नि परमात्माका तेज है। परमात्माका तेज हिरण्यगर्भमें वैश्वानर अग्नि बन जाता है। यह अजर-अमर है। यह यज्ञ करनेवाले देवताओंद्वारा प्रयुक्त होती है। 'यज्ञ सृष्टि-रचना कार्य है।' अर्थात् दिव्य रहस्यमय अग्नि अपने तेज, शक्तिसे आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्षका निर्माण करती है। वैश्वानर अग्नि समूचे सौरमण्डलके लिये रही। सूर्यने आपाओं (आपः)-को इसमें फैला दिया। ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके प्रथम सूक्तके प्रथम मन्त्रका प्रथम शब्द अग्नि है। वैदिक रूपसे समष्टि (तीनों लोकों—विश्व)-में व्याप्त सूर्य आदि तीनों अग्नियोंको 'नर' कहते हैं। अतः 'वैश्वानर'का अर्थ समस्त विश्वोंमें व्याप्त ऊर्जा अग्नि है। अग्निके तीन जन्मस्थान द्युलोक (अन्तरिक्ष भी), भूलोक और समुद्र है। अग्नि सर्वव्यापक, व्यापक रूप ऊर्जा, पुरीष्यअग्नि, सभी लोकोंकी ऊर्जाका केन्द्र, तडित्कण, आकर्षण शक्ति, स्वाभाविक ऊर्जा आदि है। अग्निकी चार प्रकारकी शक्तियाँ—ऋक् (प्रार्थनाकी शक्ति), यजुःशक्ति (कर्मठता), सामशक्ति (संगीतकी शक्ति) और अथर्वशक्ति (विज्ञानकी शक्ति) हैं। चार शक्तियोंसे अभिप्राय—आधिभौतिक शक्ति, आधिदैविक, आध्यात्मिक शक्ति एवं मौलिक शक्तिसे है। अर्थात् जीवन-मृत्यु प्रत्येक पदार्थकी रचना सम्भव है।

ऋग्वेदमें अग्निको विद्युद्रथ कहा गया है—**'विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः।'** (ऋग्वेद ३।१४।१)।' ऋग्वेदमें कहा गया है कि अग्नि अपने प्रकाशसे द्युलोक एवं पृथिवीको प्रकाशित करती है। अग्नि जीवनशक्तिका दाता (जीव-पीत-सर्ग) कहा है। जीव-पीत-सर्ग यानि जो प्राणियोंके द्वारा पीने या अन्दर लेनेसे नवीन सृष्टि करता है। ऋग्वेदके अनुसार वायु-मन्थनसे अग्नि (विद्युत्) उत्पन्न होती है, **'मथीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा।'** (ऋग्वेद १.७१.४)। यजुर्वेदमें सूर्य और अग्निको निधिपा (कोषकी रक्षा करनेवाला) बताया है। अग्निमें सम्प्रेषण शक्ति है—**'विश्वस्य दूतम् अमृतम्' स दुद्रवत् स्वाहुतः।** (यजुर्वेद १५.३३.४४)।' जीवन विज्ञानकी दृष्टिसे 'अग्नि स्वतन्त्र स्नायु संस्थान' है। ऋग्वेदमें अग्निको अनन्त ऊर्जाका महासागर कहा है—**'सूनो सहस ऊर्जां पते।** (ऋग्वेद ८.१९.७)।' महर्षि अंगिराने शब्दब्रह्मकी शक्तिसे

कठोरतम पर्वतको तोड़ा। वहीं यजुर्वेदमें कहा है कि अग्निसे कठोरतम पत्थर तोड़ सकते हैं—'**वीडुं चिदद्रिम् अभिनत् परायन् अग्निम्।** (यजुर्वेद १२.२३)। आध्यात्मिक रूपसे अग्नि चित् तत्त्व है। सविता देवता (सूर्य भी) दिव्य चेतना है।' सविता देवताके गायत्री छन्दमें मन्त्रसे ज्ञानके प्रकाश और धारण करनेयोग्य मेधा एवं तेज देनेकी प्रार्थना की गयी है। वेदके अनुसार हमारा सूर्य आकाशमें वरुण राजाकी परिक्रमा लगाता है। अथर्ववेदके अठारहवें काण्डके तीसरे सूक्तके मन्त्रोंके अनुसार सूर्यसे पृथिवीकी उत्पत्ति हुई—'**बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि।**' (अथर्ववेद १८.३.२५—३५) यजुर्वेदमें कहा गया है कि सूर्यकी ऊष्माका रहस्य निरन्तर प्राण-अपानका परिवर्तन है—'**अन्तश्चरति रोचनाऽस्य प्राणादपानती।**' (यजुर्वेद ३.७)

वेदमें सूर्य रश्मिमें तरंगदैर्घ्य, विकिरण, ताप, विद्युत् चुम्बकीय प्रवाह, तेजोविकिरण पराकासनी, अवरक्तता, प्रकाश विकिरण, जीवाणु, विविध रंग, सौर ऊर्जा, औषधशक्ति आदिका सविस्तार वर्णन है। वेदमें सविता देवता, सूर्य देवता, अग्नि देवता आदिके मन्त्र नये रहस्यलोकमें ले जाते हैं। वेदमन्त्रोंमें स्पष्टरूपसे कहा है कि सूर्य देवता लौह जबड़ेके कारण 'ओउम्' का गान बहुत ही मन्द मधुर स्वरमें करते हैं। इससे उनका मुँह अधिक नहीं खुलता है। पश्चिमी जगत्के विद्वानोंने उसे गल्प कहा। प्रकारान्तरमें अमेरिकी एजेन्सी 'नासा'ने सूर्यकी ध्वनि जारी की। यह वेदवर्णित ध्वनिसे हूबहू मेल खाती है। इस प्रकार लाखों वर्ष पूर्वके वेद आज भी सटीक एवं सत्य हैं।

वैदिककालके ऋषियोंको सविता देवता एवं सूर्य देवताकी अनन्त ऊर्जाकी शक्तियोंका गूढ़ ज्ञान रहा। इससे सर्वशक्तिमान् सूर्यास्त्रोंकी रचना की गयी। सूर्यास्त्रकी संहारक क्षमताको ध्यानमें रखकर इसे गुप्त-से-गुप्त रखा गया। सूर्य रश्मियोंके गुह्यज्ञानको महामुनि भारद्वाजने सार्वजनिक किया।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वैदिक रूपसे सृष्टिकी रचना अग्नि एवं सोमसे हुई। वेदमें सूर्य अथवा आदित्यकी शक्तिका आधार सोम तत्त्व है—'**सोमेन आदित्या बलिनः।**' (अथर्ववेद १४.१.२) विश्वकी प्रेरक शक्ति, ज्योतिकी आधार शक्ति चेतनाका स्रोत है। इसी क्रममें सूर्यको चर और अचरकी आत्मा कहा गया है—'**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।**' (ऋग्वेद १.११५.१)। दूसरे शब्दोंमें सूर्यसे ही पृथिवीपर जीवन है। यजुर्वेदमें कहा है कि पृथिवी, सूर्य आदि सदा घूमते रहते हैं, '**समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः।' समु विश्वमिंद जगत्।** (यजुर्वेद २०.२३)। ऋग्वेदके १०वें मण्डलके १३९वें सूक्तके चौथे मन्त्र में कहा गया है कि इन्द्रने सूर्यकी परिधिको चारों तरफसे देखा। योगदृष्टि और साधनासे सूर्यकी परिधिको देखना सम्भव हुआ। '**इन्द्रः परि सूर्यस्य परिधीन अपश्यत्।**' (ऋग्वेद १०.१३९.४)।

वेदमें कहा गया है कि राजा वरुण सूर्यके लिये मार्ग बनाता है। वरुण जहाँ चलनेका मार्ग नहीं है, वहाँ पैर रखनेके लिये पथ-निर्माण करता है—'**उरूं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उँ अपवे पादा प्रतघातवेऽकः।**' (ऋग्वेद १.२४.८) सूर्यको सभी कार्योंमें वरुणकी सहायताकी आवश्यकता होती है। यह वैदिक मान्यता है कि मानवीय पिण्ड अथवा अण्ड और ब्रह्माण्ड एकाकार है। वेद मानवीय शरीरस्थ अण्डमें स्थित वैदिक देवताओंका भी रहस्योद्घाटन करता है। वेदके अनुसार मानवीय शरीरमें सूर्य ब्रह्मरन्ध्र अथवा सहस्रार और नाभिके समीप स्थित है। अथर्ववेदके प्रथम काण्डके तीसरे सूक्तमें कहा गया है कि हे आदित्य देवो! इस मनुष्यमें जाग्रत् रहो; '**विश्व देवा वसवा रक्षतममुतादित्य जागृत यूयमस्तिन्।**' अथर्ववेदमें शुद्धिकी विधिमें पाँच देवोंसे शुद्धिकी प्रार्थना की गयी है। ये पाँच देवता सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु और आप हैं। इनकी शक्तियाँ क्रमशः सूर्यसे प्रकाश, अग्निसे तपन, चन्द्रसे सौम्यतापूर्ण प्रकाश, वायुसे गति और आपः (जल)-से शान्ति है। वेदमें सूर्यकी उपमा नेत्रज्योतिसे की गयी है। 'जीव विज्ञानकी दृष्टिसे सूर्य मस्तिष्कमें क्रियातन्तुओंसे सम्बद्ध नाड़ीग्रन्थि है। सूर्य मानवके क्रियातन्त्रको नियन्त्रित करता है।' सूर्यके रथके सात अश्व मानवीय शरीरमें सात क्रियातन्तु हैं। ये मस्तिष्कमें विद्यमान मुख्य ज्ञानतन्तुओंके केन्द्रसे उत्पन्न होते हैं। दूसरे शब्दोंमें सूर्य सात ज्ञानेन्द्रियों—दो आँख, दो कान, दो नाक एवं एक जिह्वाके द्वारा बाह्यजगत्की सूचनाएँ एकत्रकर निर्णयानुसार कर्मेन्द्रियोंसे क्रियान्वयन करवाता है। इस प्रकार वेदमें वर्णित सूर्यका जीववैज्ञानिक वर्णन बहुत ही अद्भुत है।

सत्संग-सुधा

(श्रीकेशोरामजी अग्रवाल)

[आदरणीय श्रीकेशोरामजी अग्रवाल गीताप्रेस-संस्थान-समूहके अध्यक्ष हैं। उन्होंने अनेक वर्षोंतक श्रद्धेय सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका सान्निध्य और सत्संग-लाभ प्राप्त किया है। उसी सत्संग-सुधाके कुछ विन्दु साधकोंके कल्याणहेतु उन्होंने प्रेषित किये, जो यहाँ प्रस्तुत हैं—सम्पादक *]*

श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका, जिन्होंने गीताप्रेस गोरखपुरकी स्थापना की तथा 'कल्याण' मासिक पत्रिकाका प्रकाशन प्रारम्भ करवाया; उनका एकमात्र उद्देश्य था—मनुष्योंको भगवत्प्राप्ति हो तथा उनको पुन: जन्म-मरणके चक्करमें घूमना न पड़े।

वे भगवत्प्राप्तिके लिये चार साधन बताते थे—(१) सत्संग, (२) भजन-कीर्तन, (३) ध्यान एवं (४) निष्काम सेवा।

वे सत्संगको दादा, भजनको उसका पुत्र, ध्यानको पौत्र बताते थे। पौत्र युवावस्था होनेसे बापसे भी ज्यादा मेहनत कर सकता है तथा कमाई ज्यादा कर सकता है, परंतु उसकी उत्पत्ति सत्संगरूपी दादासे ही होती है। ध्यान भगवत्प्राप्तिमें बहुत ज्यादा सहायक है, इसलिये उसे नवयुवक पौत्रका दर्जा देते थे।

(१) वे भगवान् राम, कृष्ण, शिव, शक्ति—इनमें कोई भेद नहीं मानते थे। सब भगवान्‌के स्वरूप एक हैं। जिसकी जिसमें रुचि हो, वही साधनाका लक्ष्य बना ले।

(२) मरणासन्न व्यक्तिको भगवन्नाम सुनाना, गीता आदि सुनानेको सत्संगमें उच्च दर्जा देते थे। जितने आदमियोंके सामने वह मरणासन्न व्यक्ति प्राण छोड़े, उतने ही मुक्तिके अधिकारी बन जाते हैं। यह मुक्तिकी लूट है।

(३) दो बार सन्ध्या करने—प्रात: और सायं कम-से-कम सूर्योदयसे पहले प्रात:काल और सायंकाल सूर्यास्तसे पूर्व करनेपर उनका बहुत जोर था। इतनेमात्रसे भगवत्प्राप्ति हो सकती है, यदि यह समयपर और प्रेमसे की जाय। यज्ञोपवीतधारी ही इस प्रकार सन्ध्या कर सकता है, नहीं तो केवल जलसे अर्घ्य दे सकता है।

(४) बलिवैश्वदेव करनेपर उनका बहुत आग्रह था। इसकी विधि तत्त्वचिन्तामणि पुस्तकमें भी है। केवल नित्य-प्रति गृहस्थ-भाई नियमसे यह करें तो भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

यज्ञोपवीतधारी मन्त्र बोलकर बलिवैश्वदेव करे। माता-बहनें बिना यज्ञोपवीत धारण किये 'राम' नाम कहकर बलिवैश्वदेव कर सकती हैं।

(५) सत्य भाषण एवं सद्व्यवहारपर उनका बहुत जोर था। भिक्षा माँगकर, चने चबाकर चाहे दिन बिताना पड़े, परंतु झूठका आश्रय प्राण जानेपर भी नहीं लेना चाहिये। सेल-टैक्स, इनकम-टैक्सकी चोरी और झूठे बहीखाते कभी नहीं रखने चाहिये। व्यापारमें माप-तौल, गिनती न तो कम देना चाहिये न ज्यादा लेना चाहिये।

(६) मनुष्यको चमड़ा, मांस, मदिरा, लहसुन, प्याज—इनको काममें नहीं लाना चाहिये, न व्यापार करना चाहिये।

(७) जीवनमें 'समता' को ही वे विशेष आदर देते थे। समताका आना ही भगवत्प्राप्तिकी कसौटी मानते थे। यह चार जगह आनी चाहिये तथा हर समय हर परिस्थितिमें रहनी चाहिये—(१) प्राणी, (२) पदार्थ, (३) भाव और (४) क्रिया। (गीता ५। ६८)

(८) शास्त्रोंमें वेदोंको पूरा आदर देते हुए भी वे गीताजीको विशेष आदर देते थे। गीताके भावोंका प्रचार उनका प्रधान लक्ष्य था। गीताजीके १८ वें अध्यायके ६८-६९ श्लोकोंको पढ़कर गीता-प्रचारकी बात उनके मनमें आयी, उसीके फलस्वरूप गीताप्रेसकी स्थापना हुई।

(९) आपसके व्यवहारमें वे स्वार्थ और अहंकारके त्यागका निवेदन करते थे, जिससे आपसमें प्रेम बढ़े।

(१०) गीताप्रेसके ट्रस्टीको अपने पदका अभिमान नहीं रखना चाहिये, उसे अपनेको संस्थाका सेवक मानना चाहिये।

(११) भगवत्प्राप्तिमें कंचन-कामिनीका त्याग तो आवश्यक है ही। मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा, शरीरका आराम—

ये खास बाधक रह जाते हैं, इसलिये मान-बड़ाई, प्रतिष्ठा, अपनी पूजा आदिकी चाहना न हो—इस बातपर उनका बहुत ज्यादा जोर था।

(१२) गीताप्रेसकी पुस्तकें, गीता, रामायण इनके प्रचारपर उनका बहुत ही जोर था।

(१३) आपसके व्यवहारमें पैसे तथा स्त्रीका सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये।

(१४) भोजनमें जहाँतक हो सके, तीन चीजें लेनी चाहिये—एक खानेकी और दो लगानेकी (सब्जी आदि)।

(१५) गाजर, फूलगोभी, बैगन काममें नहीं लेने चाहिये। बैगनका बीज यदि पेटमें रह जाय तो नरकमें जाना पड़ सकता है।

(१६) दिनमें सोना नहीं चाहिये। जो आदमी रात्रिमें काम करता है, वह दिनमें सो सकता है।

(१७) वे प्राय: छ: घण्टे सोना पर्याप्त समझते थे। रात्रिमें १० से प्रात: ४ बजेतक।

(१८) मरणोपरान्त स्मारक बनवानेकी इच्छा रखना वे बहुत ही अनुचित समझते थे।

(१९) उनके कथनानुसार जीवन धारण करनेवालेको अपना मानते थे।

(२०) भगवान्‌की स्मृति हर समय बनी रहे—यह जीवनका ध्येय मानते थे।

बोध-कथा—

कच्चा बर्तन

सन्त-मण्डलीके साथ ज्ञानेश्वर महाराज गोरा कुम्हारके घर आये। नामदेव भी साथ थे। ज्ञानदेवने गोरासे कहा—'तुम कुशल कुम्भकार हो। बताओ, इनमेंसे कौन-सा बर्तन कच्चा है?'

गोराने पिटनी लेकर पीटना शुरू कर दिया। सभी सन्त मार खाकर भी शान्त रहे। नामदेवकी बारी आयी तो वे एकदम बिगड़ उठे। चट गोरा बोला—'यही कच्चा भाजन है।'

नामदेव बड़े ही दुखी हुए। सब सन्तोंके बीच गोराद्वारा किये गये अपमानकी उन्होंने भगवान्‌से शिकायत की।

भगवान्‌ने कहा—'नामा! सच है कि तू मेरा परम भक्त है और मैं तेरे लिये सदा सब कुछ करनेको तैयार रहता हूँ। फिर भी तुझमेंसे मेरे-तेरेका भेद न मिटनेसे तू कच्चा ही है। वह तो बिना गुरुकी शरण गये मिट नहीं सकता। शिवालयमें बिठोवा खेचर परम सन्त हैं। उनके पास जाकर ज्ञान प्राप्त कर आ।'

नामदेव बिठोवाके पास गये। बिठोवा सो रहे थे। उनके पैर शिवकी पिण्डीपर धरे देख नामदेवको बड़ी अश्रद्धा हुई। उसने सोचा—क्या ऐसे ही अधिकारीसे ज्ञान पानेकी प्रभुने मुझे सलाह दी। यह क्या— 'प्रथमग्रासे मक्षिकापात: ?'

आखिर नामदेव कह ही बैठे—'महाशय, आप बड़े सन्त कहलाते हैं और शंकरकी पिण्डीपर पैर धरते हैं!'

विठोबाने कहा—'नामा! मैं बूढ़ा जर्जर हो गया हूँ। तुम्हीं मेरे पैर उठाकर उस जगह रख दो, जहाँ शिवकी पिण्डी न हो।'

नामदेवने उनके पैर पकड़कर पिण्डीसे उतार अन्यत्र रखे। वहाँ भी शिवकी पिण्डी दीख पड़ी। वह जहाँ-जहाँ उनके पैर उठाकर रखता, वहीं सर्वत्र शिवकी पिण्डिका दीख पड़ती। नामदेव असमंजसमें पड़ गया। उसने विठोबा खेचरके चरण पकड़ सर्वत्र शिव-ही-शिव दीख पड़नेकी बात कही और इसका रहस्य पूछा।

विठोबाने नामदेवके सिरपर अभय कर रखकर अद्वैतका बोध कराया। नामदेवकी द्वैतबुद्धि मिट गयी।

दूसरे दिन सन्त-सभाके बीच भगवान्‌ने नामदेवको लक्ष्यकर सन्तोंसे सगर्व कहा—'अब यह भाजन भी पक्का बन गया।' [भक्ति-विजय, अध्याय १८]

मारवाड़ी लोककथा—

पिताकी सीख

मारवाड़की मरुभूमिके एक प्राचीन कस्बेकी बात है, रामदास नामक एक धनवान् सेठ रहता था। सेठ प्रभुका प्रिय भक्त, सदाचारी, मेहनती, दान-पुण्य करनेवाला और सेवाभावके गुणोंसे सम्पन्न था। लक्ष्मीकी अपार कृपासे सेठका खजाना पूरा भरा था। रामदासकी भार्याका स्वर्गवास हो जानेके बाद वह स्वयं भी अब दुर्बल होकर बीमार रहने लगा था। उसे अपने जीवनकी समाप्तिका आभास होने लगा था। मृत्युकाल नजदीक देख उसने अपने इकलौते पुत्र मोहनको पास बैठाकर उसे समझाया कि मैं अब जानेवाला हूँ। तेरे लिये अपार सम्पदा कमायी है। तुम भी मेहनत करके इसमें बढ़ोत्तरी करते रहना। धन कमानेके तुझे तीन उपाय बता रहा हूँ, इनका पालन करते रहना।

१. पहला उपाय—सदा दुकानपर छाँया आजे और सदा दुकानसे छाँया ही जाजे।

२. दूसरा उपाय—सदा मीठा भोजन करजे।

३. तीसरा उपाय—अगर धन कम हो रहा हो तो मकरानाकी देहली जाजे।

पुत्रको शिक्षा देते ही रामदास श्रीरामके शरणागत हो चिरनिद्रामें सो गये। उनका स्वर्गवास हो गया। पुत्र मोहनने पिताकी स्मृतिमें अच्छा दान-पुण्य किया। सवा महीने बाद मोहनने पिताके व्यापारको सँभालनेके लिये पिताकी दी हुई तीनों शिक्षाओंको यादकर अपनी बुद्धिके अनुसार आचरण करनेकी तैयारी करने लगा।

मोहनने अपने घरसे पिताकी दूकानतकके तीन किमीतकके कच्चे रास्तेके दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी दूरीपर बड़े-बड़े छायादार पेड़ लगवा दिये। उन पेड़ोंकी देखभाल करने और पानी देनेके लिये कई साथियोंको लगाकर उनकी माहवार मजदूरी तय कर दी। धीरे-धीरे पेड़ बड़े होने लगे और पूरा मार्ग छायादार हो गया।

दूसरी शिक्षाके लिये मोहनके रसोईघरमें रोज मीठे पकवान बनने लगे, जिन्हें खा-खाकर मोहन बीमार हो गया। अब मोहनकी बीमारीके इलाजमें धन पानीकी तरह बहने लगा। धीरे-धीरे सेठ रामदासका दिया हुआ खजाना खाली हो गया। मोहनकी आर्थिक दशा दयनीय होने लगी।

मोहनको पिताजीकी तीसरी शिक्षा याद आयी और वह उसके अनुसार मकराना कस्बेमें आ गया और वहाँ घूम-घूमकर मकरानेकी देहलीका पता पूछने लगा। मकरानेके लोग उसकी हँसी उड़ाने लगे। मोहन वहाँसे दुखी हो वापस अपने गाँव लौटनेकी तैयारी करने लगा। संयोगसे उसे दुखी देख एक सज्जन पुरुषने उसकी दीन दशाका कारण पूछ लिया। तब मोहनने अपने सारे हालात और पिताजीकी शिक्षाओंके अनुसार अपने क्रिया-कलाप उन सज्जन पुरुषको बता दिये।

उन सज्जन पुरुषको मोहनकी अल्प और नासमझ बुद्धिपर बहुत तरस आया और वे उसके गाँवतक उसके साथ आये। गाँवमें थोड़ा विश्राम करके उन्होंने प्रेमभावसे उसके पिताजीकी तीनों शिक्षाओंका मूल भाव समझाया।

पहली शिक्षा—*'छाँया जाजे छाँया आजे।'*

अर्थ—तुम सदा अपने धन्धेके निमित्त दुकानपर प्रातः जल्दी जाना और संध्याको सदा सूर्यास्तके बाद वापस घर जाना। इस प्रकार तुम्हें सदा ही जाने-आनेमें छाया ही मिलेगी।

दूसरी शिक्षा—सदा मीठा भोजन करना।

अर्थ— भोजन सदा भूख लगनेपर ही करना चाहिये। भूखे पेटको रूखा-सूखा जो मिल जाय, वह उसे सदा मीठा एवं स्वादिष्ट लगता है।

तीसरी शिक्षा—*'धन-समाप्तिपर मकरानाकी देहली जाजे।'*

अर्थ—तुम्हारे घरमें ही जहाँ मकरानेके संगमरमर पत्थरकी देहली बनी हुई है, उसके नीचे धन गड़ा हुआ है। अगर जरूरत हो तो निकाल लेना।

वे सज्जन पुरुष मोहनको पिताकी तीनों शिक्षाओंका सही बोध कराकर वहाँसे लौटे। मोहनको भी अपने अल्प ज्ञानपर बहुत ही खेद हुआ। आगेसे मोहन सावधान होकर अपना जीवन-यापन करने लगा।

इस छोटी-सी बोध कथासे हमें कई शिक्षाएँ मिलती हैं—

१. हमें हमारा अल्प ज्ञान गलत राह दिखा सकता है।

२. किसी भी शिक्षाकी हमें पूर्ण समझ होनी चाहिये।

३. बुजुर्गोंद्वारा दिये उपदेशोंके मूलभावमें हमारे प्रति उनका आशीर्वाद और उनकी मदद ही झलकती है।

४. पिता संसारसे जाते-जाते भी पुत्रोंकी मंगल कामना करके जाता है। [**प्रेषक-श्रीजेठमलजी वर्मा 'नागी'**]

श्रीकृष्णकी गुरुदक्षिणाके दो प्रसंग

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)

प्राचीन समयमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातिके बालकोंको पाँच वर्षकी आयुमें यज्ञोपवीत हो जानेके बाद किसी ऋषिके यहाँ आश्रममें शिक्षाके लिये भेजा जाता था। यह आश्रम गुरुकुल कहलाते थे, जो शहरसे दूर वनोंमें होते थे। वहाँपर कोई राजाका लड़का हो या गरीबका; सबको समान भावसे शिक्षा दी जाती थी तथा साथ-साथ रहना पड़ता था। गुरुकुलमें रहकर गुरुदेवकी सेवा करना, ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना, आश्रमके कार्योंमें सहयोग करना तथा शस्त्र-शास्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण करना ही उनका मुख्य कार्य होता था।

श्रीबलरामजी और श्रीकृष्णके यज्ञोपवीत-संस्कारके पश्चात् दोनों भाई ब्रह्मचारीके वेशमें अवन्तिकापुरी, जिसे वर्तमानमें उज्जैन कहते हैं, उसके पास सान्दीपनि ऋषिके आश्रममें पढ़ने गये। सान्दीपनि ऋषिकी जन्मभूमि काशी थी, परंतु वह अवन्तिकापुरीमें अपना आश्रम बनाकर रहते थे। ऋषि सान्दीपनि धनुर्वेद, अस्त्र-शस्त्रके ज्ञाता और समस्त शास्त्रोंके महाज्ञानी थे। शिक्षाके लिये उनका गुरुकुल पूरे देशमें विख्यात था, दूर-दूरसे विद्यार्थी वहाँ पढ़ने आते थे। वहाँपर विद्यार्थियोंको ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना पड़ता था तथा प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्तमें उठकर आश्रमके नियमोंके अनुसार कार्य करना पड़ता था। दिनमें गुरुदेवसे विद्याध्ययन करते, चौथे पहरमें वनमें जाकर लकड़ियाँ तथा फल आदि लाते, फिर शामको स्नान करके संध्या-हवन करते थे तथा रात्रिमें गुरुदेवकी सेवा करनेके पश्चात् विश्राम करते थे। सान्दीपनि आश्रममें शिक्षा ग्रहण करते समय श्रीकृष्णके जीवनकी दो मुख्य घटनाएँ जिनका श्रीमद्भागवतमें वर्णन आता है, उनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

गुरुदक्षिणाका पहला प्रसंग

सान्दीपनि-आश्रममें यदुवंशी श्रीकृष्ण तथा ब्राह्मण परिवारके सुदामा शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। इन दोनोंमें आपसमें बड़ी मित्रता थी। गुरुपत्नी इन दोनोंको अपने पुत्र-जैसा प्यार करती थी और इनके खाने-पीनेका पूरा ध्यान रखती थी। श्रीकृष्ण चंचल स्वभावके थे तथा सुदामा शर्मीले थे। कभी-कभी तो श्रीकृष्ण मित्रता और प्यारमें सुदामाका खाना भी खा जाया करते थे। मगर सुदामा न तो इसका बुरा मानते थे और न ही कुछ कहते थे। चौंसठ दिनोंमें श्रीकृष्ण और बलरामने वेद, उपनिषद्, उपवेद, वेदांग, शास्त्र, पुराण आदि सभी विद्याएँ और चौंसठों कलाएँ सीख लीं तथा उसी समय सुदामाकी भी शिक्षा समाप्त हुई। अब दोनों मित्रोंके अपने-अपने घर जानेका समय आ गया। दोनोंको इसका बहुत दुःख हो रहा था। मगर आश्रम तो छोड़ना ही था। दोनोंने एक साथ जाकर गुरु सान्दीपनिको प्रणाम किया। गुरुने उन दोनोंको जीवनमें सफल होनेका आशीर्वाद दिया और कहा कि आश्रममें रहते जिस तरह तुम दोनोंमें प्रगाढ़ मित्रता है, उसी तरह आगे भी जीवनमें ऐसी ही प्रगाढ़ मित्रता बनी रहे। तुम दोनों जीवनभर मित्र बने रहो, यही मेरी गुरुदक्षिणा है।

श्रीकृष्णने कहा—'गुरुदेव! आपके आशीषसे हमारी मित्रतामें कभी कमी नहीं आयेगी।' फिर दोनों अपने-अपने गाँवमें जाकर अलग-अलग कार्यमें व्यस्त हो गये। समय व्यतीत होते देर नहीं लगती, सब ठीक चल रहा था, किंतु एक बार अकालके कारण गाँवमें सुदामाकी आर्थिक स्थिति बिलकुल बिगड़ गयी। यहाँतक कि सुदामा तथा उनकी पत्नीके लिये दोनों समयके भोजनके लिये भी अन्न नहीं रहा। ऐसी दयनीय स्थितिमें सुदामाकी पत्नीको ध्यान आया कि द्वारकाके राजा श्रीकृष्ण इनके मित्र हैं, ऐसे समयमें उनसे मिलकर मित्रताका लाभ लेना चाहिये। पहले तो सुदामा संकोचवश श्रीकृष्णके पास जानेके लिये तैयार नहीं हुए। किंतु पत्नीके बार-बार जिद्द करनेपर द्वारका जानेको तैयार हो गये। सुदामा अनुभवी और ज्ञानी थे, उन्होंने विचारकर पत्नीसे कहा—'श्रीकृष्ण द्वारकाके राजा हैं और राजासे मिलनेके लिये कुछ भेंट ले जाना भी जरूरी होता है। हमारे पास क्या है, जो मैं लेकर श्रीकृष्णके राजदरबारमें मिलने जाऊँ, मैं खाली हाथ नहीं जा सकता।'

पत्नी शीघ्र ही इसका इन्तजाम करनेमें जुट गयी, पड़ोसीके यहाँसे तीन मुट्ठी चावल लाकर एक धोतीमें बाँधकर सुदामाको देते हुए कहा कि आप यह भेंट लेकर श्रीकृष्णसे मिलने अवश्य जायँ। चावलकी पोटली लेकर सुदामा द्वारकाके लिये चल पड़े। द्वारकाके निकट पहुँचे, तो वहाँके बड़े-बड़े सुन्दर महलोंको देखकर आश्चर्यमें पड़ गये। पूछते-पूछते वे राजमहलके मुख्य द्वारपर आ गये तथा डरते-डरते द्वारपालसे कहा—मेरा नाम सुदामा है। मैं कृष्णका बचपनका मित्र तथा सहपाठी हूँ, उनसे मिलना चाहता हूँ। द्वारपालने कहा—'आप यहाँ बैठें। मैं आपके आगमनका समाचार महाराजको दे आता हूँ, उनकी आज्ञा मिलनेपर आपको उनके पास मिलने ले जाऊँगा।' यह कहकर द्वारपालने महलमें जाकर श्रीकृष्णसे निवेदन किया—महाराज! द्वारपर एक बहुत ही गरीब ब्राह्मण आया है, वह नंगे पैर, फटेहाल है, वह कह रहा है कि आपके साथ सान्दीपनि ऋषिके आश्रममें शिक्षा पायी है। अपना नाम सुदामा बताता है और आपसे मिलना चाहता है।

सुदामाका नाम सुनते ही श्रीकृष्णने कहा—'कहाँ हैं सुदामा' और नंगे पाँव ही द्वारकी तरफ भागे। द्वारपर पहुँचकर सुदामाको देखते ही उससे लिपट गये और प्रेमके कारण उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। श्रीकृष्ण सुदामाका हाथ पकड़कर अपने महलके विशेष कक्षमें ले गये, उन्हें अपने सिंहासनपर बैठाया। रुक्मिणीसे परातभर जल मँगवाया तथा स्वयं नीचे बैठकर उनके पाँव धोने लगे। श्रीकृष्ण उनके पैर धोते जाते थे और सुदामाकी दशा देखकर उनके नेत्रोंसे आँसू भी गिर रहे थे। श्रीकृष्णने कहा—'मित्र! तुम अबतक कहाँ रहे? तुम्हारी यह दशा कैसे हो गयी? तुम मेरे पास अबतक क्यों नहीं आये? क्या मेरी मित्रतापर विश्वास नहीं था?'

कृष्णके हृदयसे निकले स्नेहभरे उद्‌गार सुनकर सुदामा सारा दुःख भूल गये। उन्होंने कहा—'मुझे कोई दुःख नहीं है, तुम्हारी भाभीने तुमसे मिलनेको कहा इसलिये आया हूँ।' श्रीकृष्णने कहा—'भाभीने मेरे लिये क्या सौगात भेजी है?' सुदामा दिव्य नगरी द्वारकाके राजाको दो मुट्ठी चावल भेंट करनेमें संकोच कर रहे थे तथा पोटलीको बगलमें छिपा रहे थे। श्रीकृष्णने उसे देख लिया तथा लपककर पोटली छीन ली और हँसकर बोले—'सुदामा! अभी भी तुम्हारी बचपनकी आदत गयी नहीं है। यह तो भाभीने मेरे लिये ही भेजी होगी, इसे क्यों छिपा रहे हो?' यह कहकर पोटली खोल ली और कच्चे चावल चबाने लगे।

श्रीकृष्णकी दृष्टिसे सुदामाकी स्थिति छिपी नहीं रही, वे स्वयं ही सब समझ गये। उन्होंने बिना सुदामाको कुछ बताये चुपचाप उसके गाँवमें उसकी कुटियाकी जगह सभी सुख-साधनोंसे सम्पन्न महल बनवा दिया। कुछ समय द्वारकामें रहकर जब सुदामा वापस गाँव आये, तो वहाँकी स्थिति ही बदल गयी थी। सारे गाँवका जैसे नये सिरेसे निर्माण हुआ हो। गाँवके बीचमें एक सुन्दर विशाल महल बना था। उस महलके पास पहुँचकर सुदामाने पूछा—'क्यों भाई! गाँवकी यह कायापलट किसने कर दी? यहीं कहीं मेरी झोपड़ी थी, उसका कहीं पता नहीं। मेरी ब्राह्मणी कहाँ गयी?' उस आदमीने कहा—'सुदामा! यह जो सामने महल है, यहीं तुम्हारी झोपड़ी थी। द्वारकाके राजा श्रीकृष्णने इसे बनवाया है।' वह आदमी यह सब बता रहा था कि सुदामाकी पत्नीने छतसे सुदामाको नीचे देखा तो तुरंत दौड़कर नीचे आयी और अपने पतिके चरणोंमें प्रणाम करके बोली—'नाथ! यह महल आपका है। मैं कहती थी न कि अपने मित्र श्रीकृष्णके पास जाओ, वे हमारा दुःख दूर करेंगे। आप वहाँ गये और यहाँ उन्होंने यह सब करा दिया। सुदामाने कहा—प्रिये! श्रीकृष्णकी उदारता, विनम्रता अवर्णनीय है। मेरा वहाँ अति प्रेमपूर्वक आदर-सत्कार किया, मुझे कुछ भी भनक नहीं पड़ने दी और यहाँ चुपचाप झोपड़ीकी जगह महल बनाकर उसे धन-धान्यसे भर दिया। धन्य है कृष्ण! तुम्हारी यह मित्रता उदारता और विनम्रता, जो युग-युगतक अमर रहेगी।

इसी प्रकारकी श्रेष्ठ मित्रताका काश! हम भी अपने जीवनमें अनुकरण कर सकें तो हमारा जीवन भी धन्य हो सकता है!

गुरुदक्षिणाका दूसरा प्रसंग

गुरु सान्दीपनिके यहाँ श्रीकृष्ण और बलरामजीकी शिक्षा पूर्ण होनेके पश्चात् जब गुरुकुलसे विदा होनेका समय आया तो श्रीकृष्णने गुरुजीसे कहा—'आचार्य! आपके

गुरुकुलमें हमने वेदों-शास्त्रों तथा शस्त्रोंकी सर्वांग शिक्षा प्राप्त की है। कृपया आज्ञा दीजिये, क्या गुरुदक्षिणा प्रदान करें?' गुरु सान्दीपनिने कहा—'वत्स! क्या गुरुदक्षिणा दोगे? जाकर सांसारिक जीवनमें प्रवेश करो और इस शिक्षा-दीक्षासे जन-कल्याण करो। मेरा एक ही दु:ख है, पर उस दु:खका परिमार्जन करनेकी शक्ति हम मनुष्य तो क्या देवताओंमें भी नहीं है।' श्रीकृष्णने कहा—'गुरुदेव! आप अपना दु:ख बतायें, हम दोनों भाई आपका वह दु:ख दूर करनेका प्रयास करेंगे।'

सान्दीपनिने कहा—'तुम दोनोंकी शक्ति-सामर्थ्यपर मुझे भरोसा है, पर वह दु:ख तो मेरे पुत्रकी अकाल-मृत्युका है। मृत्युके घर जाकर कौन वापस आया है?' चिन्तित होकर उन्होंने कहा—'गुरुदेव! मृत्यु तो जीवनका अन्तिम और अटल सत्य है। पर अकाल-मृत्युके पीछे किसीका कोई छल-छद्म भी हो सकता है। आप हमें विस्तारसे बतायें। हम पता लगायेंगे।'

गुरु सान्दीपनिने कहा—'वत्स! मेरा पुत्र प्रभास क्षेत्रमें समुद्रके किनारे खेलने गया था, खेलते-खेलते वह जाने कहाँ लोप हो गया? वहाँसे वह आजतक नहीं लौटा। समुद्रमें डूब गया होता तो उसका शव तो अवश्य मिलता। लगता है, उसे किसी जलचरने समुद्रमें ही मारकर खा लिया होगा।'

श्रीकृष्णने कुछ देर विचार किया, फिर गुरुको प्रणामकर कहा—'गुरुदेव! आशीर्वाद दीजिये। अगर सम्भव हुआ तो आपका पुत्र ही गुरुदक्षिणाके रूपमें लाकर आपको दूँगा।' ऐसा कहकर कृष्ण-बलरामने गुरुआश्रमसे विदा ली। श्रीकृष्ण तथा बलरामजीने यमलोक पहुँचकर यमराजसे भेंटकर, उनसे पूछा कि हमारे गुरु सान्दीपनिका पुत्र कई वर्ष पूर्व प्रभास-क्षेत्रमें समुद्र-तटपर खेलने गया था, वह लौटा नहीं, क्या उसकी मृत्यु हो गयी, और उस जीवकी कर्मफलसे क्या स्थिति है? यमराजने चित्रगुप्तको बुलाकर बहीखाता देखकर उस बालककी स्थिति बतानेको कहा। चित्रगुप्तने बहीखाता देखकर बताया कि उस बालकका अभीतक मरणयोग नहीं है, किंतु वह घर नहीं लौटा है तो उसका अपहरण हो गया है।

श्रीकृष्णने कहा—'धर्मराज! आप सर्वज्ञ हैं। आप अन्तर्दृष्टिसे देखकर बतायें कि वह बालक जीवित अवस्थामें कहाँ है? धर्मराजने कुछ देर ध्यान करके फिर कहा कि प्रभास-क्षेत्रमें समुद्रके बीच एक निर्जन द्वीपमें पंचजन असुरने बालकका अपहरण कर लिया है तथा उसे आसुरी शिक्षा देकर उसे ब्राह्मणत्वसे विमुखकर आसुरी शक्तिसे सम्पन्न करना चाहता है।

श्रीकृष्ण एवं बलरामको गुरुपुत्रका पता लगते ही दोनों रथमें बैठकर प्रभास गये। उन्हें देखते ही रत्नोंकी भेंट लेकर समुद्र ब्राह्मणवेशमें उनका स्वागत करने आया। समुद्रके बतानेपर श्रीकृष्णने समुद्रजलमें रहनेवाले पंचजन नामके शफरूपधारी राक्षसको युद्धके लिये आह्वान किया। पंचजन चिंघाड़ते हुए अपनी गुफासे निकला और श्रीकृष्ण एवं बलरामपर टूट पड़ा। अन्य असुर सैनिक भी गुफासे बाहर आ गये। कुछ देरतक भूमिपर घमासान युद्ध होता रहा। असुरोंने जब देखा कि उनकी शक्ति क्षीण हो रही है, तो समुद्रमें कूद पड़े।

श्रीकृष्ण और बलरामने भी समुद्रमें छलाँग लगायी और असुरोंको घेर लिया तथा पंचजनको थका-थकाकर इतना मारा कि वह युद्ध करनेलायक नहीं रहा। तब दोनों उसे बालोंसे पकड़कर समुद्रसे बाहर द्वीपपर ले आये और बालकके बारेमें पूछा। युद्ध तथा शोर सुनकर बालक गुफासे निकलकर बाहर आ गया था। श्रीकृष्ण-बलरामने जब गुरुपुत्रको देखा तो अति उत्साहसे भरकर राक्षसपर ऐसा मुष्टिप्रहार किया कि उसका वहीं प्राणान्त हो गया।

श्रीकृष्ण और बलराम गुरुपुत्रको लेकर सीधे सान्दीपनिके आश्रममें आये और गुरुसे बोले—गुरुदेव! गुरुदक्षिणाके रूपमें आपका पुत्र ले आया हूँ। गुरु-पत्नीसे कहा—'माते! पुत्रवियोगसे इतने दिनसे आप विह्वल थीं, अब इसे स्वीकारकर अपना वात्सल्य देकर स्वयं मातृ-सुख प्राप्त कीजिये।'

पुत्रके अपहरणके बारेमें सारी बातें जानकर गुरु सान्दीपनिने आशीर्वाद देते कहा—'वत्स! तुम्हारे-जैसा शिष्य पाकर मेरा गुरुकुल धन्य हुआ। सम्भवत: तुम्हारा जन्म ही संसारके कल्याण तथा परोपकारके लिये हुआ है। दैवी-गुणोंसे सम्पन्न तुम दोनोंको अपने कार्योंसे युग-युगान्तरतक अक्षय कीर्ति प्राप्त होगी, यही मेरा आशीर्वाद है।'

संसारमें कैसे रहें ?

(डॉ० श्रीसुनील कुमारजी सारस्वत)

(१)

सत्यका आचरण करें

गाँधीजीका मानना था कि सत्यसे चंचल मन स्थिर होता है। जो व्यक्ति झूठ सोचता या बोलता है, वह अपने मनको काबूमें नहीं रख सकता और न ही अपने व्यवहारपर ही नियन्त्रण कर पाता है। इसलिये जो सत्यको प्राप्त कर पाता है, वही पूर्ण हो पाता है। अत: सत्य बोलना और उसके अनुसार आचरण करना हमारा स्वभाव होना चाहिये; क्योंकि—***'साँचको आँच नहीं'***।

(२)

परिस्थितियोंके वशवर्ती न हों

हम अपना जीवन सदैव विभिन्नताओंको देखनेमें व्यतीत करते हैं। यह भाव विकृति पैदा करता है। जीवन उसे कहा जाता है, जिसे मौत छू न सके, जहाँ कोई दु:ख, निराशा, कुण्ठा या उदासीनता न हो। परिस्थितियोंको मौत छू सकती है, लेकिन जीवनको नहीं, किंतु दु:खकी बात है कि हम परिस्थितियोंको ही जीवन मान लेते हैं, इसीलिये उनसे बँध जाते हैं। यह बन्धन ही हमें भयभीत, आसक्त और परेशान कर देता है। परिस्थितियाँ तो आने-जानेवाली हैं, फिर चाहे वह हर्षकी हों या शोककी, रोगकी हों या निरोगकी, सुखकी हों या दु:खकी। दु:खद परिस्थितियोंको हम चाहकर भी रोक नहीं सकते; क्योंकि वे प्राकृतिक हैं, तो फिर उनके भँवरमें क्यों फँसना ?

(३)

हर परिस्थितिमें भगवान्‌का स्मरण करें

जब व्यक्ति दु:खकी स्थितिमें रहता है, तो भगवान्‌की बहुत याद आती है, लेकिन जब वह सुखमें रहता है, तो अपने जीवनके अमूल्य क्षण व्यतीत करनेमें जरा भी संकोच नहीं करता है। व्यक्तिको लगता है कि जिन्दगी उसकी खुदकी देन है। उसके मनमें अभिमान बना रहता है कि वह धरतीपर अमर बनकर आया है। वह अपनी खुमारीमें परमात्माको भी कुछ नहीं समझता है। इसी भ्रममें अपनी सीमाको लाँघ जाता है। अमानवीय काम करने लगता है और फिर बेईमानी, लोभ, मोह और मायामें उलझकर दु:खको आमन्त्रित कर लेता है। जब कोई व्यक्ति परमात्मा-प्रदत्त विभूतिका दुरुपयोग करता है, तो वे उसे अपने विधानके अनुसार उसके कर्मोंका फल जरूर प्रदान करते हैं। अच्छे कर्म करनेवालोंको अच्छा फल मिलता है और बुरे कर्मोंका फल बुरा अवश्य ही मिलकर रहता है। जो व्यक्ति परमात्मा-प्रदत्त विभूतिका सदुपयोग करता है, उसकी सद्‌बुद्धि बनी रहती है।

(४)

देवासुर-संग्राम सत् और असत्‌का द्वन्द्व है

राम और रावणका युद्ध तो कभी एक बार हुआ था, पर हमारे मानसमें यह युद्ध निरन्तर चल रहा है। राम प्रतीक हैं सत्‌के और रावण प्रतीक है असत्‌का। सत् और असत्‌का द्वन्द्व मानव-जीवनसे सम्बन्धित क्रियाओंका शाश्वत सत्य है। सत् प्रवृत्ति देवरूप है और असत् प्रवृत्ति असुररूप है। देवोंकी संख्याका न्यून होना और असुरोंकी संख्याका आधिक्य होना स्वाभाविक है। देव और असुर तो प्रवृत्तिगत होते हैं। अच्छी प्रवृत्तियोंका निर्माण श्रम-साध्य है और बुरी प्रवृत्तियोंकी सृष्टि सहज ही हो जाती है। कुप्रवृत्तियोंका प्राकट्य सहजोन्मेषरूपसे होता है। इस प्रकार हमारे अन्तस्‌में निरन्तर चलनेवाले देवासुर-संग्रामकी अनेकानेक रूपावलियाँ ही बाह्य जगत्‌के विभिन्न क्रियाकलापोंका विधान किया करती हैं।

(५)

सतत आत्मचिन्तन करें

मनुष्य एक सांसारिक प्राणी है। संसारके भौतिक मायाजालका हमारे मानस-पटलपर प्रतिपल प्रभाव पड़ता है। कर्मोंके प्रवाहमें बहते हुए हमें उचित-अनुचितका आभास ही नहीं होता। ऐसी विकट परिस्थितियोंमें आत्मचिन्तन ही मनुष्यको मानसिक शक्ति प्रदान करता है। आत्मचिन्तन स्वयंको परखनेकी प्रक्रिया है। यह

अन्तस्पर पड़े हुए तामसिक विचारोंकी परतको अलग कर देता है। मनुष्यके अन्त:करणपर अशुभ कर्मोंका जो प्रभाव पड़ता है, आत्ममन्थनसे उसे अतिशीघ्र दूर किया जा सकता है। सांसारिक कार्योंमें मनुष्य कई बार इतना तल्लीन हो जाता है कि वह अपने जीवनकी स्वाभाविकतासे वंचित होकर दु:खोंके अज्ञात बोझको न चाहते हुए भी लादे फिरता है। भौतिक जंजालसे ग्रस्त होकर विवेकहीनताके साथ न करनेयोग्य कार्योंको करता रहता है। भारतीय चिन्तन-परम्परामें आत्ममन्थनको साधनके मार्गका प्रवेशद्वार कहा गया है। आत्मचिन्तनसे मनुष्य नरसे नारायण तथा पुरुषसे पुरुषोत्तमकी पदवीको प्राप्त कर सकता है। अत: यह आवश्यक है कि हम सतत आत्मचिन्तन करें।

(६)

जीवनको ऊर्ध्वमुखी बनायें

जिस प्रकार सघन मेघमालाके बीच विद्युत् कौंध जाती है, उसी प्रकार असत् वृत्तियोंके बीच यदा-कदा सत् वृत्तियाँ अपना प्रभाव व्यक्त करती हैं। जो असत् वृत्तियोंको नष्ट करनेमें सक्षम होता है, उसीकी संज्ञा होती है 'पुरुष'। पुरुष वही है, जिसने अपने पहले (पुरु) पापोंको (उष) जला डाला है। उसीकी संज्ञा ब्रह्म है। उसे परमपुरुष भी कहते हैं। वह पूर्णत: निष्पाप है, निष्कलुष है। इसी परमपुरुषका जयघोष 'रामकथा' है। ऊर्ध्वमुखी साधनाकी ही यह चरम परिणति है। इसे इतिहासका सत्य भी कहा जा सकता है और सत्यका इतिहास भी। इसमें जीवन-निर्माणके वे सभी तत्त्व विद्यमान हैं, जो व्यक्तिका कायाकल्प किये बिना नहीं रहते।

(७)

अहंभावसे बचें

शिवजीने जिस धनुषसे त्रिपुरासुरको मारा, उस धनुषरूपी 'मैं' को छोड़ दिया, इसीलिये भगवान् शिव कभी अशिव नहीं होते हैं। बादमें शिवजीने उस धनुषको ज्ञानी शिष्य जनकको दे दिया। कारण—शंकरजी जब कहीं जाते तो लोग कहते थे कि शिवजीके कन्धेपर वही धनुष है, जिससे उन्होंने त्रिपुरासुरका संहार किया था। चूँकि शिव समष्टि अहंके देवता हैं, इससे वे समझ गये कि त्रिपुरासुर तो मर गया, पर मारनेवाला अहं तो अभी शेष ही है। इसीलिये उन्होंने उससे भी अपनी ममता हटा ली। शंकरजीने जिससे ममता हटायी, उसीसे उनके शिष्य परशुरामजीने ममता जोड़ ली और उसके टूटनेसे दुखी हुए।

शंकरजीने धनुषसे कह दिया था कि मैं तुम्हें छोड़ रहा हूँ, पर जब मेरे स्वामी राम तुम्हें उठायें, तो तुरन्त टूट जाना। धनुषके कहा कि तो फिर आप ही मुझे क्यों नहीं तोड़ देते? तब शंकरजीने बहुत अच्छी बात कही कि व्यक्ति तो कर्तव्यके अभिमानको ही छोड़ सकता है। शेष भगवान् ही कर सकते हैं। अहंको अहंसे नहीं तोड़ा जा सकता, वह तो विनम्रतासे ही टूटेगा। वही भगवान् रामने परशुरामजीके साथ किया। परशुरामजीने जितने तीखे शब्दोंका प्रयोग किया, भगवान् रामने उतने ही विनम्रताभरे शब्दोंसे उनके अहंको निर्मूल कर दिया। अहं चाहे सात्त्विक हो, चाहे राजसिक हो या तामसिक हो; वह छोड़ा जा सकता है।

अहंभावमें तल्लीन मन हमें पतित बनाता है, जबकि गर्व और अहंसे मुक्त ध्यानमें तल्लीन मन हमारा उत्थान करता है, मोक्षको सुगम बनाता है। मोक्ष मृत्युके बादकी स्थिति नहीं है। यह जीवित रहते ही सुख और दु:खमें स्थिर होनेकी स्थिति है, अहंके नाशकी स्थिति है, अस्तित्वमें व्याप्त ईश्वरत्वको जगानेकी स्थिति है, स्वयं ईश्वर हो जानेकी स्थिति है।

सन्त कबीरने कहा था, ***'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं॥'*** अर्थात् अहंसे युक्त मेरा मन ढूँढ़कर भी कहीं ईश्वरको न पा सका, किंतु उस अहंके नाश हो जानेसे अब केवल ईश्वर ही है, मैं तो कहीं नहीं। अर्थात् यदि मोक्ष, ईश्वर अथवा श्रेष्ठको प्राप्त करना है, तो अहंको त्यागना ही होगा, जीवमात्रको गले लगाना ही होगा।

महात्मा कबीर कहते हैं—***'साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय। का पर दाया कीजिए का पर निर्दय होय॥'***

जब सभी उस ईश्वरके अंश हैं, तब कौन अपना,

कौन पराया, सभी करुणा, ममता तथा स्नेहके पात्र हैं। इस रहस्यको जो जान लेता है, वही श्रेष्ठ है। करुणा, सहृदयता तथा सद्भावनाकी त्रिवेणीमें अवगाहन करके ही व्यक्ति ईश्वरकी निकटताका अधिकारी होता है।

(८)

आत्मसंयम रखें

आत्मसंयम यानी इन्द्रियोंपर अंकुश। हमारी इन्द्रियाँ इतनी प्रबल हैं कि वे सदैव कामनारत रहती हैं। ऐसेमें हमें उनकी अनावश्यक माँगोंकी पूर्ति करनेसे परहेज करना चाहिये। वास्तवमें इन्द्रियोंकी तृप्ति उतनी ही की जानी चाहिये, जिससे नैतिक मूल्योंका पतन न हो। इस प्रकार आत्मसंयम ही हमारे लिये सफलताकी पहली सीढ़ी बन जाती है। आत्मसंयम न रहनेके कारण ही मनुष्य इच्छाओं और बुराइयोंका दास बनकर रह जाता है।

आज समाजमें फैले भ्रष्टाचार, घृणा और दुष्कर्म-जैसी बुराइयोंके कारण कहीं-न-कहीं आत्मसंयमकी कमी ही है। असंयमित व्यक्ति वास्तवमें जानवरोंसे भी बदतर है। संयम एक ऐसा अंकुश है, जो हमें विवेक और सत्यके पथपर आरूढ़ रखता है। सत्यके सामने असत्य ज्यादा देर नहीं ठहर सकता। सत्यवादीके लिये जरूरी है कि उसमें विनय और नम्रता हो। इसके लिये यह संयम हमारी आन्तरिक चेतनासे ही जन्म लेता है। आत्मसंयमका अर्थ यह भी नहीं कि अपनी इन्द्रियोंकी एकदम उपेक्षा की जाय। वास्तवमें इन्द्रियाँ ही हमें जीवनके सुखोंका आभास कराती हैं। आवश्यकता है तो इनमें सन्तुलन रखनेकी। सन्तुलन साधकर हम अपनी इन्द्रियोंको आवश्यक रूपसे तृप्त रखकर अपने जीवनको सार्थक बना सकते हैं।

(९)

वसुधैव कुटुम्बकम् और निष्काम भावना रखें

सूर्य सम्पूर्ण सृष्टिका पोषण कर रहा है, वृक्ष सभीको फल प्रदान कर रहे हैं, नदी सभीको जल पहुँचा रही है; ऐसेमें प्रकृति हमसे भी यही अपेक्षा रखती है कि हम भी निष्काम भावसे सबके हितके लिये काम करें। भारतीय संस्कृति विश्व-बन्धुत्वका शंखनाद करती है। हमारे पूर्वजोंने इस पृथ्वीको अपना कुटुम्ब माना है, किंतु यह भाव क्षीण होता जा रहा है, आज आवश्यकता है इस भावके पोषणकी।

पुण्डलीकका चरित्र फल-त्यागका आदर्श हमारे सामने रखता है। वे अपने माता-पिताकी सेवा कर रहे थे। उनकी सेवासे प्रसन्न होकर पाण्डुरंग (भगवान्) दौड़े आये। परंतु पुण्डलीकने पाण्डुरंगके स्वागतमें माता-पिताकी सेवाका कार्य नहीं छोड़ा। अपने माता-पिताकी सेवा ही उनके लिये सच्ची ईश्वर-भक्ति थी। पुण्डलीक आसक्तिमें फँसे नहीं। वे भगवान्‌से बोले—आप स्वयं मुझे दर्शन देनेके लिये आये हैं, यह मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है, पर मेरे लिये तो आप भी भगवान् हैं और ये माता-पिता भी। इनकी सेवामें लगे रहनेके कारण मैं आपकी ओर ध्यान नहीं दे सका, इसके लिये मुझे क्षमा कीजिये। पुण्डलीककी यह भावना भी फल-त्यागकी युक्तिका अंग है।

गीता बताती है कि कर्मको उत्तमता और दक्षतासे करना चाहिये। सकाम व्यक्तिकी अपेक्षा निष्काम व्यक्तिका कर्म अधिक अच्छा होना चाहिये। सकाम पुरुष तो फलासक्त है, परंतु फलकी इच्छासे रहित व्यक्तिका प्रत्येक क्षण और सारी शक्ति कर्ममें लगी रहेगी। नदीको छुट्टी नहीं, हवाको विश्राम नहीं, सूर्य सदैव जलते रहना जानता है। निष्काम कर्म करनेवाला सतत सेवा कर्मको ही जानता है। निरन्तर कर्मरत ऐसे व्यक्तिका कर्म उत्कृष्ट होगा ही।

(१०)

दूसरेका हित करें

प्रेमके क्षणमें अतीत और भविष्य नहीं होते, सिर्फ वर्तमान होता है। हम एक-एक पलका सदुपयोग करें। हम जो भी कार्य करें, उसका हर क्षण मानव-कल्याणमें लगा हो। वास्तवमें हमारे पास वर्तमानका एक पल होता है, क्योंकि इसके पहले आ चुका पल अतीत बन चुका है और जो आनेवाला पल है, वह भविष्य है। हमारे हाथमें

जो पल है, वही वर्तमान है, जिसे हम भविष्यसे खींचकर अतीतमें धकेलते चले जा रहे हैं। अतीत भविष्यकी प्रयोगशाला है। अतीतकी गलतियोंसे शिक्षा लेकर सचेत रहनेका मंच वर्तमान है। महर्षि वेदव्यासका सन्देश है—

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

हित-चिन्तन ही पुण्य और दूसरेको पीड़ा पहुँचाना ही पाप है। अगर कोई अठारह पुराण न पढ़े, तो यही वचन उसके जीवनको निर्मल बना देनेके लिये बहुत है। रामायण हो या भागवतजी, सबका मूल सन्देश एक ही है, वह है परोपकार। तुलसी बाबाने भी तो यही कहा है—

परहित सरिस धरम नहिं भाई । परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

धार्मिक हो जानेके लिये बड़े ज्ञान या शास्त्र अथवा मन्दिर-मस्जिद, गुरुद्वारे, चर्चकी राह जानेकी भी जरूरत नहीं है,ये वचनद्वय ही जीवनमें उतारने होंगे।

छीनकर खानेवालोंका कभी पेट नहीं भरता और बाँटकर खानेवाला कभी भूखा नहीं मरता। शरणमें आये मित्र, शत्रु, कीट, पतंग, बालक, वृद्ध सभीके दु:खोंका निवारण निष्कामभावसे करना परोपकार है। मनुष्यके साथ यह बड़ा विरोधाभास है कि वह पुण्यके सुखद फलकी कामना करता है, किंतु पुण्यकर्म नहीं करना चाहता—**'पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।'** इसी तरह वह पापके फलको भोगनेसे बचता है, किंतु बड़ी चतुराईसे पाप-कर्म करता रहता है। **'पापस्य फलं नेच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः।'**

इस पतनोन्मुखतासे मुक्तिका एकमात्र उपाय आत्मस्वरूपका बोध हो जाना है। भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे ही यह ज्ञान सम्भव है कि 'यह जीवात्मा भगवान्‌का अंश है।' गीतामें भगवान्‌की वाणी है—**'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः'** (१५।७) इस ज्ञानकी दृढ़ आधारशिला है—आस्तिकता। ईश्वरको अपने हृदयमें अनुभव करना, उसकी सत्ताको सम्पूर्ण जगत्‌में व्याप्त देखना और उसकी अनुभूतिसे रोमांचित हो उठना ही सच्ची आस्तिकता है। आस्तिकता ईश्वरकी समीपताकी अनुभूति कराती है।

अन्तमें भगवान् रामके शिशुरूपकी वन्दना करते हुए उनसे यही प्रार्थना है कि ***'छीनि छपाकर की छबि कौं, छबि धाम बने अनुकूल रहैं'*** तथा ***'मेरो कलेस हरैं अवधेस के बालक जू की मृनाल सी बाहैं।'*** यदि कहीं ऐसा बानक बन जाय कि ***'निसि बासर बास करै उर मैं अवधेस के बालक की किलकारी'*** तो जीवन धन्य हो जाय।

अन्तमें डॉ० गणेशदत्त सारस्वतके एक छन्दका स्मरण करते हुए अपनी वाणीको विराम देता हूँ—

मोद-मढ़े कढ़े आँचल-ओट सों सोभित अंक में हैं जननी के।
धूरि सों पूरि रह्यो तन है, बिधुरी अलकैं झलकैं अलिनी के।
जाचक ह्वै छवि-धाम बिलोकत, साधक-सिद्ध सबै अवनी के।
नेह-मनी-समनी-त्रयताप हैं, पाप-हनीं, निधि मो निधनी के॥

बोध-कथा—

क्यों जागूँ ?

दूसरा महायुद्ध चल रहा था। भीषण बम-वर्षा हो रही थी, पूरा लंदन नगर सन्त्रस्त था। सारे नगरमें भयका साम्राज्य छाया हुआ था, पर उसी नगरमें एक बूढ़ी महिला निश्चिन्त रूपसे सोती और निश्चिन्त जागती। आस-पासके लोगोंकी नींद पूरी तरह गायब हो चुकी थी। वे न सुखसे सो पाते और न सुखसे जाग पाते, किंतु बुढ़िया निश्चिन्त सोती गहरी नींद लेती। लोगोंने बुढ़ियासे पूछा—'माँ! क्या बात है? सारा नगर भयसे आक्रान्त है। यहाँ कोई सुखकी नींद नहीं सो पाता। तुम कैसे सुखपूर्वक सो पाती हो?' बुढ़ियाने कहा—'बेटा! इसका रहस्य यह है कि मेरा प्रभु सदा जागता रहता है, फिर मैं क्यों जागती रहूँ, दोको जागनेकी जरूरत नहीं'। [श्रीपुरुषोत्तमकुमारजी परिहार]

सन्त-चरित—

श्रीविप्रनारायण (भक्तपदरेणु)

भगवान्‌की लीला विचित्र है। किसी-किसीपर वे बहुत शीघ्र ढुल जाते हैं और किसी-किसीकी वे बड़ी कठिन परीक्षा लेकर तब उन्हें अपना कृपापात्र बनाते हैं। और जिस प्रकार काँटेको काँटेसे ही निकाला जाता है, उसी प्रकार किसी-किसीको मायामुक्त करनेके लिये वे उसपर अपनी मायाका ही प्रयोग करते हैं। विप्रनारायणके साथ उन्होंने तीसरे प्रकारका ही व्यवहार किया था।

विप्रनारायण भगवान्‌की वनमालाके अवतार माने जाते हैं। इनका जन्म एक पवित्र ब्राह्मणकुलमें हुआ था। इन्होंने भली-भाँति वेदाध्ययन करके अपनेको समस्त वेदोंके सारभूत भगवान्‌के चरणोंमें ही सर्वतोभावेन समर्पित कर देना चाहा था। ये भगवान्‌से प्रार्थना करते—'मुझे आपकी कृपाके सामने इन्द्रका पद भी नहीं चाहिये। शास्त्रोंमें मनुष्यकी आयु सौ वर्षकी बतायी गयी है। इसमेंसे आधी आयु तो निद्रामें ही बीत जाती है और आधीमेंसे भी पन्द्रह वर्ष बालकपनकी अज्ञान-अवस्थामें निकल जाते हैं और शेष आयु भी भूख-प्यास, काम-क्रोधादि विकारों तथा नाना प्रकारकी व्याधियों और मानसिक कष्टोंमें ही बीतती है। अतः हे नाथ! ऐसी कृपा कीजिये कि मुझे इस संसारमें पुनः जन्म न लेना पड़े और यदि जन्म लेना भी पड़े तो मुझे आपकी सेवाका सुख निरन्तर मिलता रहे।'

इस प्रकार मन-ही-मन प्रार्थना करते हुए वे श्रीरंगजीके स्थानपर गये और वहाँ अपने-आपको श्रीरंगजीके अर्पणकर विष्णुचित्तकी भाँति मन्दिरके चारों ओर एक सुन्दर बगीचा लगा दिया। वहाँसे फूल ला-लाकर और उनके हार गूँथ-गूँथकर वे भगवान्‌को अर्पण किया करते। वे स्वयं एक वृक्षके नीचे एक मामूली-सी झोंपड़ी बनाकर रहते थे और भगवान् श्रीरंगनाथके प्रसादसे ही जीवननिर्वाह करते थे। संसार उनकी दृष्टिमें मानो था ही नहीं, भगवान् श्रीरंगनाथजी उनके लिये सब कुछ थे। वे कहते—'अहा! जब-जब मैं भगवान्‌को शेषशय्यापर लेटे हुए देखता हूँ, मेरा शरीर प्रेम-विह्वल हो जाता है।' वे जब इस प्रकार भगवान्‌के ध्यान और भजनमें लीन थे, भगवान्‌ने कदाचित् उन्हें शुद्ध करने और उनकी वासनाओंका क्षय करनेके लिये ही उनकी एक बार बड़ी कठिन परीक्षा ली।

श्रीरंगजीके मन्दिरमें एक बड़ी रूपवती देवदासी रहती थी, जिसके सौन्दर्यपर स्वयं राजा भी मुग्ध थे। उसका नाम देवदेवी था। एक दिन वह अपनी बहिनको साथ लेकर विप्रनारायणके बगीचेमें आयी और वहाँकी प्राकृतिक शोभाको देखकर दोनोंकी दोनों चमत्कृत हो गयीं। सहसा देवदेवीकी दृष्टि विप्रनारायणपर पड़ी। ये भगवान्‌का नाम लेते जाते थे और तुलसीके वृक्षोंको सींचते जाते थे। वे अपनी धुनमें इस प्रकार मस्त थे कि उन्होंने देवदेवीकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। उनकी इस उपेक्षासे देवदेवीके मानको बड़ी ठेस पहुँची। उसने सोचा—'मेरे जिस अनुपम सौन्दर्यपर राजालोग भी मुग्ध हैं, यह तपस्वी युवा उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता।' देवदेवीकी बहिनने कहा—'जिनका चित्त अखिल सौन्दर्यके भण्डार भगवान् नारायणके चरणकमलोंका चंचरीक बन चुका है, वे क्या एक नारीके घृणित रूपपर आसक्त हो सकते हैं?' देवदेवीने बड़े गर्वके साथ कहा—'मैं भी देखूँगी कि यह ब्राह्मणकुमार मेरे रूपपाशमें कैसे नहीं बँधता।' उसकी बहिनने कहा—'तुम्हारी यह आशा दुराशामात्र है। यदि तुम्हारे रूपका जादू इस ब्राह्मणकुमारपर चल गया तो मैं छः महीनेतक तुम्हारी दासी होकर रहूँगी।' देवदेवीने भी बड़े आत्मविश्वासके साथ कहा—'यदि मेरा चक्कर इसपर न चल सका तो मैं भी छः महीनेतक तुम्हारी दासी होकर रहूँगी।' इस प्रकार दोनों बहिनोंमें होड़ बद गयी।

उक्त घटनाको कई दिन हो गये। एक दिन अकस्मात् विप्रनारायणने देखा कि उनके सामने एक संन्यासिनी खड़ी है। उन्होंने चकित होकर पूछा—'तुम कौन हो और यहाँ क्यों आयी हो? तुम्हारा यहाँ इस प्रकार आना उचित नहीं, अतः शीघ्र लौट जाओ।' संन्यासिनीने कहा—'महाराज! एक बार मेरी करुण-कथा सुन लीजिये, इसके बाद जैसा उचित समझें, करें।

मेरी माता मुझे अपनी आबरू बेचकर धन कमानेके लिये बाध्य करती है; किंतु मेरी इच्छा नहीं है कि मैं अपने जीवनको इस प्रकार कलंकित करूँ। अत: मैं आपकी शरणमें आयी हूँ, आप कृपाकर मुझे आश्रय दीजिये। मैं इसी वृक्षके नीचे पड़ी रहकर आपके बगीचेकी रक्षा करूँगी, भगवान्‌के लिये सुन्दर हार गूँथकर आपके अर्पण करूँगी और आपकी जूँठन पाकर अपना शेष जीवन व्यतीत करूँगी।' सरलहृदय विप्रनारायणको उसकी इस कपटभरी करुण कथाको सुनकर दया आ गयी और उन्होंने दया-परवश होकर उसे अपने बगीचेमें रहनेके लिये अनुमति दे दी।

× × ×

माघका महीना है। बड़े जोरकी वर्षा हो रही है और साथ-साथ ओले भी गिर रहे हैं। वह दीन-हीन संन्यासिनी बाहर खड़ी ठिठुर रही है, उसकी साड़ी पानीसे तर हो गयी है। उसकी इस दीन दशाको देखकर विप्रनारायणको दया आ गयी, उन्होंने उसे अपनी झोंपड़ीमें बुला लिया और उसे पहननेको सूखे वस्त्र दिये। शास्त्रोंकी आज्ञा है कि पुरुषको परस्त्रीके साथ और स्त्रीको परपुरुषके साथ एकान्तमें भूलकर भी नहीं रहना चाहिये। ऐसे समय मनका वशमें रहना बड़ा कठिन होता है। किंतु विप्रनारायण उस छद्मवेशिनी संन्यासिनीके चंगुलमें फँस गये। उनकी तपस्या, उनका शास्त्रज्ञान, उनका त्याग, उनका वैराग्य—सब कुछ उस वारांगनाकी मोह-सरितामें बह गया! कुसंगका परिणाम होता ही है!

विप्रनारायण, जो अबतक भगवान्‌की सेवामें तल्लीन रहते थे, आज एक वेश्याके क्रीतदास हो गये। देवदेवीने अब अपना असली रूप प्रकट कर दिया। वह वापस अपने स्थानको चली गयी और विप्रनारायण प्रतिदिन खिंचे हुए उसके घर जाने लगे। उन्होंने अपना सर्वस्व उसके चरणोंमें न्योछावर कर दिया। उनकी विपुल सम्पत्ति, उनके देवोपम गुण और उनका उदात्त चरित्र सब कुछ स्वाहा हो गया!

परंतु जिसने एक बार भगवान्‌के चरणोंका आश्रय ले लिया, भगवान् क्या उसकी उपेक्षा कर सकते हैं? कदापि नहीं। देवदेवीने विप्रनारायणका सब कुछ लूटकर उन्हें दर-दरका भिखारी बना दिया। जब उनके पास उसकी पूजा करनेको कुछ भी न रहा, तब उसने उन्हें दुत्कारकर अपने घरसे बाहर निकाल दिया और लाख गिड़गिड़ानेपर भी भीतर न आने दिया। विप्रनारायण निराश होकर लौट गये, परंतु उनका देवदेवीके प्रति आकर्षण कम न हुआ।

× × ×

रात्रिका समय है। देवदेवीने देखा कि कोई बाहर खड़ा हुआ उसके द्वारको खटखटा रहा है। पूछनेपर मालूम हुआ वह विप्रनारायणका सेवक है। उसने कहा 'विप्रनारायणने आपके लिये एक सोनेका थाल भेजा है।' थालको देखकर देवदेवी फूली न समायी। उसने झटसे थालको ले लिया और नौकरसे कहा—'विप्रनारायणजीको जल्दी मेरे पास भेज दो, मैं उनके लिये व्याकुल हो रही हूँ।' इधर उसी आदमीने विप्रनारायणको जगाकर कहा—'जाओ, तुम्हें देवदेवी याद करती है।' इस संवादको सुनकर विप्रनारायणके निर्जीव देहमें मानो प्राण आ गये। वे चारपाईसे उठकर सीधे देवदेवीके यहाँ पहुँचे और देवदेवीने उस दिन उनकी बड़ी आवभगत की! अब हमें यह देखना है कि विप्रनारायणका यह नौकर कौन था!

दूसरे दिन प्रात:काल श्रीरंगजीके मन्दिरमें बड़ी सनसनी फैल गयी। पुजारीने देखा कि 'श्रीरंगजीका सोनेका थाल गायब है।' राज्यके कर्मचारियोंने जाँच-पड़ताल आरम्भ की। चोरीका पता लगानेके लिये गुप्तचर भी नियुक्त हुए। अन्तमें वह थाल देवदेवीके यहाँ मिला। देवदेवीने कर्मचारियोंको बतलाया कि 'यह थाल कल रातको ही उसे विप्रनारायणका नौकर दे गया था।' विप्रनारायणने कहा—'मैं तो एक दीन-हीन कंगाल हूँ, मेरे पास नौकर कहाँसे आया। और न मेरे पास इस प्रकारकी मूल्यवान् चीजें ही हैं।' थाल मन्दिरमें पहुँचा दिया गया। देवदेवीको चोरीका माल स्वीकार करनेके लिये राज्यकी ओरसे दण्ड दिया गया और विप्रनारायणको निगलापुरीके राजाकी ओरसे हिरासतमें रखा गया;

क्योंकि श्रीरंगम्का मन्दिर निगलापुरी*के राजाके अधीन ही था। राजाकी विप्रनारायणके सम्बन्धमें यह धारणा थी कि वे बड़े अच्छे भक्त हैं; अत: उनकी बुद्धि इस सम्बन्धमें कुछ निर्णय नहीं कर सकी। उन्होंने सोचा, 'जो विप्रनारायण श्रीरंगनाथजीकी इतनी भक्ति करते हैं, क्या वे उन्हींकी वस्तुको इस प्रकार चुरा सकते हैं?' इसी उधेड़बुनमें उन्हें नींद लग गयी। स्वप्नमें उन्हें श्रीरंगनाथजीने दर्शन दिये और कहा—'यह सब लीला मैंने अपने भक्तका उद्धार करनेके लिये की है। मैंने ही उनका नौकर बनकर थाल देवदेवीके यहाँ पहुँचाया था। मैं तो सदा ही अपने भक्तोंका अनुचर रहा हूँ। विप्रनारायण बिलकुल निर्दोष हैं; उन्हें वापस अपनी कुटियामें भेज दो, जिससे पुन: मेरी भक्ति और सेवामें प्रवृत्त हो जायँ।' राजाको यह स्वप्न देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उनका हृदय भगवान्की दयाका स्मरण करके गद्गद हो गया। उन्हें इस बातके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि मैंने एक भक्तको हिरासतमें रखकर उनका अपमान किया और उन्हें तुरन्त मुक्त कर दिया।

इस घटनासे विप्रनारायणकी आँखें खुल गयीं, उनके नेत्रोंसे अज्ञानका पर्दा हट गया। उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये और हृदय पश्चात्तापसे भर गया। वे दौड़े हुए श्रीरंगजीके मन्दिरमें पहुँचे और भगवान्के चरणोंमें गिरकर उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति और अपनी गर्हणा करने लगे। उन्होंने कहा—'प्रभो! मैं बड़ा नीच हूँ, बड़ा पतित हूँ, पापी हूँ; फिर भी आपने मेरी रक्षा की। आपने मेरे इस वज्रहृदयको भी पिघला दिया। मैंने अबतक अपना जीवन व्यर्थ ही खोया, मेरा हृदय बड़ा कलुषित है। मेरी जिह्वाने आपके मधुर नामका परित्याग कर दिया, मैंने सत्य और सदाचारको तिलांजलि दे दी, मैंने स्वयं अपने पैरोंमें कुल्हाड़ी मारी और मैं एक वारांगनाके रूपजालमें फँस गया। मैं अब इसीलिये जीवन धारण करता हूँ, जिससे आपकी सेवा कर सकूँ। मैं जानता हूँ कि आप अपने सेवकोंका कदापि परित्याग नहीं करते। मैं जनताकी दृष्टिसे गिर गया हूँ, मेरी साधन-सम्पत्ति जाती रही। अब संसारमें आपके सिवा मेरा कोई नहीं है। पुरुषोत्तम! अब मैंने आपके चरणोंको दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया है। आप ही मेरे माता-पिता हैं, आपके सिवा मेरा कोई रक्षक नहीं है। जीवनधन! अब मुझे आपकी कृपाके सिवा और किसीका भरोसा नहीं है।' इसी समयसे विप्रनारायणका जीवन पलट गया, वे दृढ़ वैराग्यके साथ भगवान्की भक्तिमें लग गये। उन्होंने अपना नाम 'भक्तपदरेणु' रखा और बड़ी श्रद्धाके साथ वे भक्तोंकी सेवा करने लगे। उनकी वाणी निरन्तर भगवान्के नाम और गुणोंका कीर्तन करने लगी। इधर देवदेवीको भी अपने पापमय जीवनसे घृणा हो गयी, उसने अपनी सारी सम्पत्ति मन्दिरको भेंट कर दी और वह स्वयं सब कुछ त्यागकर श्रीरंगजीकी सेवा करने लगी। इस प्रकार भक्तपदरेणु और उनकी प्रेयसी देवदेवी दोनों भगवान्के परम भक्त हो गये।

बोध-कथा—

अहंकार

एक आदमी रातको झोंपड़ीमें बैठकर एक छोटेसे दीपकको जलाकर कोई शास्त्र पढ़ रहा था। आधी रात बीत गयी। जब वह थक गया तो फूँक मारकर उसने दीपक बुझा दिया। लेकिन वह यह देखकर हैरान हो गया कि जबतक दीपक जल रहा था, पूर्णिमाका चाँद बाहर खड़ा रहा, लेकिन जैसे ही दीपक बुझ गया तो चाँदकी किरणें उस कमरेमें फैल गयीं। वह आदमी बहुत हैरान हुआ यह देखकर कि एक छोटे-से दीपकने इतने बड़े चाँदको बाहर रोककर रखा। इसी तरह हमने भी अपने जीवनमें अहंकारके बहुत-से छोटे-छोटे दीपक जला रखे हैं, जिसके कारण परमात्माका चाँद बाहर ही खड़ा रह जाता है। जबतक वाणीको विश्राम नहीं दोगे, तबतक मन शान्त नहीं होगा। मन शान्त होगा, तभी ईश्वरकी उपस्थिति महसूस होगी।

* निगलापुरी या उरेयूर त्रिचिनापल्लीके निकट है और यह किसी समय बहुत बड़ा नगर था।

आरोग्य-चर्चा—

मक्खन भोजनके साथ-साथ औषधि भी है

(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)

वर्तमानमें समाजमें प्रचलित मिथ्या धारणाओंके चलते युवा पीढ़ीके बहुत-से लोग मक्खनसे परहेज करते हैं। उन्हें डर रहता है कि मक्खन खानेसे उनका मोटापा बढ़ेगा। रक्तकी जाँचमें कोलेस्ट्रॉल बढ़ा हुआ मिलेगा। भगवान् कृष्णकी पहचान माखनसे ही है। व्रजका क्षेत्र आज भी गायोंकी उपस्थितिसे परिपूर्ण है। जगह-जगह भगवान् कृष्णके द्वारा माखन खाये जानेके चित्र लगे हैं। भगवान् सदैव उत्कृष्ट वस्तुओंका भोग स्वीकार करते हैं। मक्खन तो उनका आहार रहा है। जिस वस्तुको भगवान् प्रसन्नतासे सेवन करते हों, उसका सेवन अगर मनुष्यको करनेको मिले तो यह उसके लिये परम सौभाग्यकी बात है। गायके दूधसे बना मक्खन सर्वश्रेष्ठ होता है। मक्खन केवल आहार ही नहीं, अपितु इससे कई रोगोंकी चिकित्सा भी होती है। आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें मक्खनके गुणोंकी महिमा बतायी गयी है। ताजा निकाला हुआ मक्खन वृष्य, शीतल, कान्तिकारक तथा बलकी वृद्धि करनेवाला, अग्निको तीव्र करनेवाला तथा मलको बाँधनेवाला होता है। यह वात-विकार, पित्त-विकार, रक्त-विकार, क्षयरोग, अर्श-रोग, मुखका लकवा तथा खाँसीको नष्ट करता है।

नवनीतं नवं वृष्यं शीतं वर्णबलाग्निकृत्।
संग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शार्दितकासजित्॥

(अ०हृ०सू० ५।३५)

सुश्रुतके अनुसार ताजा मक्खन लघु, सुकुमार, मधुर, कषाय, अम्ल, शीतल, मेध्य, दीपक, हृदयसंग्राहि, पित्तवातहर, वृष्य होता है। इसके सेवनसे जलन पैदा नहीं होती। यह क्षय, व्रण, शोथ, अर्श तथा मुखके लकवेको दूर करता है। पुराना मक्खन कफ और मेदको बढ़ानेवाला तथा बलकी वृद्धि करनेवाला है। यह बृंहण, शोथहर और विशेषकर बालकोंके लिये श्रेष्ठ है।

नवनीतं पुनः सद्यस्कं लघु सुकुमारं मधुरं कषायमीषदम्लं शीतलं मेध्यं दीपनं हृदयं संग्राहि पित्तानिलहरं वृष्यमविदाहि क्षयकासव्रणशोषार्शोऽर्दितापहं चिरोत्थितं गुरु कफमेदोविवर्धनं, बलकरं बृंहणं शोषघ्नं विशेषेण बालानां प्रशस्यते। (सु०सू० ४५।९२)

दूधसे निकले मक्खनके अलग गुण बताये हैं। दूधसे निकला हुआ मक्खन विशेषरूपसे मलको बाँधता है। यह रक्तरोग, पित्तरोग और नेत्ररोगोंका नाश करता है।

क्षीरोद्भवं तु संग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगजित्।

(अ०हृ०सू० ५।३६)

कच्चे दूधसे निकाला मक्खन उत्तम स्नेह, मधुर, अतिशीत, शरीरको कोमल करनेवाला, नेत्रोंके लिये हितकर, संग्राही, रक्तपित्त तथा नेत्ररोगोंको हरनेवाला होता है तथा मनको प्रसन्न करता है।

क्षीरोत्थं पुनर्नवनीतमुत्कृष्टस्नेहमाधुर्यमतिशीतं सौकुमार्यकरं चक्षुष्यं संग्राहि रक्तपित्तनेत्ररोगहरं प्रसादनं च। (सु०सू० ४५।९३)

विभिन्न रोगोंमें हितकर

खूनी बवासीरमें मिश्री तथा कमलके केसरके साथ अथवा तिलोंको पीसकर मक्खनके साथ खानेसे लाभ मिलता है।

शर्कराम्भोजकिञ्जल्कसहितं सह वा तिलैः।
अभ्यस्तं रक्तगुदजान् नवनीतं नियच्छति॥

(अ०हृ०चि० ८।११८)

खूनी दस्त लगे होनेपर भोजनसे पहले मक्खनमें मधु एवं मिश्री डालकर खाना चाहिये।

प्राग्भक्तं नवनीतं वा लिह्यान्मधुसितायुतम्।

(अ०हृ०चि० ९।८७)

तत्काल निकाले मक्खनमें आधी मात्रामें चीनी और एक-चौथाई भाग मधु मिलाकर प्रयोग करनेसे गुदापाक और रक्तातिसारमें लाभ होता है।

शर्करार्धांशकं लीढं नवनीतं नवोद्धृतम्।
क्षौद्रपादं जयेच्छीघ्रं तं विकारं हिताशिनः॥

(अ०हृ०चि० ९।१००)

बिल्व, नागर आदिके क्वाथसे बनाये गये पेयको खूनी बवासीरमें मक्खनके साथ देना चाहिये।

ह्रीवेरबिल्वनागरनिर्यूहैः साधितां सनवनीताम्

पैत्तिक अतिसारमें मक्खनका प्रयोग शक्कर और मधु मिलाकर लेना चाहिये।

नवनीतमथो लिह्यात्तक्रं चानुपिबेत्ततः।

(सु०उ० ४०।११९)

सुश्रुतसंहितामें वर्णित रसायन महा औषधियोंके प्रयोग-कालमें मक्खनका प्रयोग अभ्यंगके रूपमें करना चाहिये।

केवलं नवनीतमभ्यङ्गार्थे शेषं सोमवदानिर्गमादिति॥

(सु०चि० ३०।५)

उदर रोगोंमें गायके दूधमें थोहरका दूध मिलाकर उसमेंसे यथाविधि मक्खन निकालकर प्रयोग करनेसे उसमें लाभ होता है।

विपक्वं चावतार्य शीतीभूतं मन्थानेनाभिमथ्यनवनीत-मादाय भूयो महावृक्षक्षीरेणैव विपचेत्।

(सु०चि० १४।१०)

चरक-संहिताके विष-प्रकरणमें लिखा है कि जब गलेमें कफकी वृद्धि हो जाय, तो सोंठ, पिप्पली और यवक्षारके चूर्णको मक्खनमें मिलाकर मुखके अन्दर लेप करना चाहिये। (च०चि० २३।१८९)

गर्भावस्थामें उपयोगी

गर्भवतीका उपचार प्रिय किंतु हितकर आहार-विहारसे करना चाहिये। इस कालमें पति तथा सेवकोंद्वारा उसके प्रति प्रिय तथा हितकर व्यवहार भी करना चाहिये। गर्भवतीको आहारके रूपमें मक्खन, दूध और घीका प्रयोग करना चाहिये।

उपचारः प्रियहितैर्भर्त्रा भृत्यैश्च गर्भधृक्।
नवनीतघृतक्षीरैः सदा चौनामुपाचरेत्॥

(अ०हृ०शा० १।४३)

गर्भिणीको चतुर्थ मासमें दूध और मक्खन मिलाकर आहार देना चाहिये।

चतुर्थे पयोनवनीतसंसृष्टमाहारयेज्जाङ्गलमांस-सहितं हृद्यमन्नं च भोजयेत्।

गर्भावस्थामें सातवें मासमें अगर दोष प्रकोपसे खुजली और जलन होती है, तो बेर और मधुर द्रव्योंसे सिद्ध मक्खनका प्रयोग लाभ पहुँचाता है।

कण्डूं विदाहं कुर्वन्ति गर्भिण्याः किक्किसानि च।
नवनीतं हितं तत्र कोलाम्बुमधुरौषधैः॥

(अ०हृ०शा० १।५८)

संग्राहि दीपनं हृद्यं नवनीतं नवोद्धृतम्।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नमर्दितारुचिनाशनम् ॥

(च०सू० २७।२३०)

जिस शिशुको स्तनपान उपलब्ध न हो, उसे गाय या बकरीका दूध दिनमें दो बार मक्खनके साथ चाटनेको दे।

प्राङ्निषिद्धस्तनस्यास्य तत्पाणितलसम्मितम्।
स्तन्यानुपानं द्वौ कालौ नवनीतं प्रयोजयेत्॥

(अ०हृ०उ० १।१४)

बोध-कथा—

होनी होकर रहती है

मथुरा जिलेके एक गाँवका एक बच्चा गेहूँ पिसाने दूर किसी गाँवमें गया। चक्की देरसे चली और जब आटा लेकर बच्चा चला तो सायं हो गयी। उन दिनों उस क्षेत्रमें दो बघेर आ गये थे। जब बच्चा पोटली सिरपर रखे जा रहा था, तो उसे बघेर दिखायी दिया। पोटलीको रखकर बच्चा पेड़पर चढ़ गया। बघेर पेड़के नीचे बैठ गया। लड़का पेड़के ऊपर बैठा रहा।

रात्रिमें कुछ चोर आये और देखा, यह आटेकी पोटली क्यों रखी है? पेड़पर नजर डाली तो वह बच्चा नजर आया। पूछा, क्यों बैठा है? बच्चा बोला, 'बघेर खा जायगा', चोर कहने लगे, 'बघेर भाग गया, तू उतर, तुझे हम तेरे घर पहुँचा देंगे।' बालक पेड़से नीचे उतर आया और चोरोंने उसे उसके गाँवमें पहुँचा दिया। लड़का अपने घर तो चला गया, पर डरके मारे वह बार-बार कहता रहा 'बघेर मुझे खा जायगा।' बच्चेको समझा-बुझाकर सुरक्षित एक कोठरीमें सुलाया गया। रात्रिको वही चोर उस मकानमें सेंध (नकब) लगाने लगे, जब देखा तो वही बच्चा है, जिसे वह बघेरसे बचाकर लाये थे, तो चोर बिना चोरी किये वह घर छोड़कर चले गये, परंतु नकब लगा रह गया।

कुछ समय बाद वही बघेर आता है और नकबमें होकर मकानमें घुसता है और उस बच्चेको खा जाता है। कितना प्रयास किया, उस बच्चेको बचानेके लिये; किंतु ईश्वरका विधान कितना सत्य है, वहाँसे बचाया तो बघेरने घरमें ही उसे खा लिया। विधाताने जैसा लिखा होता है, वैसे ही होनी होकर ही रहती है। [श्री 'दास बृजेन्द्र']

गो-चिन्तन—

गोधन

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर श्रीब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराज)

धर्मशास्त्रमें गोधनका विशेष माहात्म्य बतलाया गया है। लिखा है—

सर्वेषामेव भूतानां गावः शरणमुत्तमम्।

हिन्दू-संस्कृति इस भावनासे परिपूर्ण है कि—

यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरकं नरः।

किंतु जबसे पाश्चात्त्योंकी सभ्यता-संस्कृतिका हमारी सभ्यता-संस्कृतिके साथ सम्मिश्रण हुआ है, तबसे भारतीय शिक्षा-विधानके लोप होनेसे अधिकांशतः शास्त्र-पुराणादिकी अनभिज्ञताके कारण गो-ब्राह्मणादिके प्रति शास्त्रीय धार्मिक बुद्धिका लोप-सा हो गया है।

गोवंश आज व्यावहारिक उपयोगिताकी दृष्टिसे भौतिक तुलापर तौला जा रहा है; किंतु स्मरण रहे कि आजका भौतिक विज्ञान गोवंशकी उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमोत्कृष्ट उपयोगिताका पता ही नहीं लगा सकता, जिसे भारतीय शास्त्रकारोंने अपनी दिव्यदृष्टिसे प्रत्यक्ष कर लिया था। गोवंशकी धार्मिक महानता उसमें जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म कारणरूप तत्त्वोंकी प्रखरताके कारण है, उनकी खोज और जानकारीके लिये आधुनिक वैज्ञानिकोंके भौतिक यन्त्र सदैव स्थूल ही रहेंगे। यही कारण है कि बीसवीं सदीका प्रौढ़ विज्ञानवेत्ता भी गोमाताके लोम-लोममें देवताओंके निवासका रहस्य और प्रातः गोदर्शन, गोपूजन, गोसेवा आदिका वास्तविक तथ्य समझनेमें असफल रहता है। गोधनका धार्मिक महत्त्व भाव-जगत्से सम्बन्ध रखता है और वह या तो ऋतम्भरा प्रज्ञाद्वारा अनुभवगम्य है अथवा शास्त्रप्रमाणद्वारा जाना जा सकता है, भौतिक यन्त्रोंद्वारा नहीं।

धर्मशास्त्र तो गोधनकी महानता और पवित्रताका वर्णन करता ही है, किंतु भारतीय अर्थशास्त्रमें भी गोपालनका विशेष महत्त्व है। कौटिलीय अर्थशास्त्रमें गो-पालन और गो-रक्षणका विस्तृत विवरण मिलता है। जिस भूमिमें खेती न होती हो, उसे गोचर बनानेका आदेश अर्थशास्त्रका ही है। इस प्रकार गोधन 'अर्थ' और 'धर्म' दोनोंका प्रबल पोषक है। अर्थसे ही काम (कामनाओं)-की सिद्धि होती है और धर्मसे ही मोक्षकी। अतएव गोधनसे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारोंकी प्राप्ति होती है। इसीलिये भारतीय जीवनमें गोधनका इतना ऊँचा माहात्म्य है। जो हिन्दू धर्मशास्त्रपर विश्वास रखते हैं, उन्हें चाहिये कि चतुर्वर्ग-फल-सिद्ध्यर्थ शास्त्रविधानके अनुसार गोसेवा करते हुए गोधनकी वृद्धि करें और जो धर्मशास्त्रपर आस्था नहीं रखते, उन्हें चाहिये कि 'अर्थ' और 'काम' की सिद्धिके लिये अर्थशास्त्रके नियमोंके अनुसार गो-पालन करते हुए गोवंशकी वृद्धि करनेका प्रयत्न करें।

प्रत्यक्षवादियोंके लिये इससे अधिक गोमाताकी दयालुता हो ही क्या सकती है कि वह सूखे तृण भक्षण करके जन्मभर उन्हें दुग्ध-घृत-जैसे पौष्टिक द्रव्य प्रदान करे। इतनेपर भी यदि वे गोमाताके कृतज्ञ नहीं हुए, तब तो उनमें मानवताका लेश भी नहीं माना जा सकता। गोमाताके द्वारा मानवसमाजको जो लाभ है, उसे पूर्णतया व्यक्त करनेके लिये सहस्रों पृष्ठोंकी कई पुस्तकें लिखनी होंगी। संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि गोमातासे मानवसमाजको जो प्राप्त है, उससे मानवजाति गोमाताकी सदा ऋणी रहेगी।

वध आदि हिंसक उपायोंद्वारा गोवंशका ह्रास करना धार्मिक और आर्थिक दोनों दृष्टियोंसे राजा-प्रजा दोनोंके लिये हानिकर है। अतएव ऐसी भयंकर प्रथाओंको सर्वथा रोकनेका प्रयत्न सभीको करना चाहिये। कई देशी रजवाड़ोंने इस सम्बन्धमें प्रशंसनीय कार्य किया है; किंतु जबतक केन्द्रीय सरकारका इस ओर ध्यानाकर्षण नहीं किया जायगा, तबतक सन्तोषजनक परिणाम असम्भव-सा प्रतीत होता है। इसके लिये देशव्यापी यथेष्ट प्रयत्न होना चाहिये।

साथ-ही-साथ प्रत्येक गृहमें गोपालनकी प्राचीन प्रथाको बढ़ानेका प्रयत्न भी सभी सद्गृहस्थोंको करना चाहिये। तालुकेदारों, जमींदारों, सेठ-साहूकारों आदिको चाहिये कि गोशालाओंकी वृद्धि करें, जहाँसे आदर्श हृष्ट-पुष्ट गौओं और बैलोंकी प्राप्ति हो सके। गोचरभूमिके सम्बन्धमें आजकलकी व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है। इस सम्बन्धमें मनुजीने लिखा है—'प्रत्येक गाँव और शहरके चारों ओर काफी गोचरभूमि छोड़नी चाहिये।' सभी समर्थ किसानों, जमींदारों और सेठ-साहूकारोंको अपने-अपने केन्द्रोंमें गोचरभूमियोंका यथोचित प्रबन्ध करना चाहिये और गोधनकी वृद्धिका सदैव ध्यान रखना चाहिये। इसीमें भारत और भारतीय सभ्यताका गौरव तथा सच्चा स्वार्थ निहित है।

तीर्थ-दर्शन—

श्रीगिरिराज-परिक्रमा

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

परम वन्दनीय श्रीगोलोकधाममें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके अद्भुत प्रेमसे सन्तुष्ट होकर वरदानस्वरूप श्रीगिरिराजपर्वतका प्राकट्यकर अपनी मायाके माध्यमसे व्रज-क्षेत्रमें स्थापित कर दिया। आगे चलकर यह स्थान श्रीगोवर्धनग्रामके नामसे प्रसिद्ध होकर पूज्य एवं पवित्र तीर्थ बन गया।

श्रीकृष्णके भूमण्डलपर अवतरणके पश्चात् इस श्रीगिरिराजपर्वतने उनकी दिव्य लीलामें उस समय प्रवेश किया, जब देवराज इन्द्रके प्रकोपसे व्रजवासियोंकी रक्षा तथा इन्द्रदेवका अभिमान तोड़नेहेतु निरन्तर सात दिनोंतक वे भगवान्‌की एक अँगुलीपर छत्ररूपमें विराजमान रहे। इन्द्रके पराजित होनेपर श्रीनन्दबाबासहित समस्त ग्वाल-बाल, गोप-गोपिकाओं और स्वयं श्रीकृष्णने भी इन्हें छप्पन प्रकारके भोग अर्पणकर पूजा-अर्चनाके साथ इनकी परिक्रमा की थी।

उसी समयसे यह गोवर्धनग्राम पवित्र तीर्थधाम बन गया। भारतके सभी प्रदेशोंसे आकर लाखों भक्तगण श्रीगिरि गोवर्धनकी नंगे पैर चलकर तथा दण्डवत् प्रणाम करते हुए सात कोस (लगभग बाईस किलोमीटर)-की परिक्रमाकर अपने जीवनको धन्य करते हैं। ग्रामके बीचमें स्थित मानसीगंगामें स्नानकर, श्रीगोवर्धननाथजीके मन्दिरमें ठाकुरजीका फूल-मालाओं तथा दूधसे अभिषेककर दानघाटीसे परिक्रमामें प्रवेश करते हैं।

दानघाटीकी गाथा—एक समयकी बात है, श्रीराधाजी अपनी सखियोंके संग गोविन्दकुण्डपर ऋषियोंद्वारा आयोजित विशाल यज्ञके लिये घी और शहदसे भरे कलश सिरपर रखकर उसी ओर जा रही थीं। मार्गमें श्रीकृष्णने श्रीराधासे आगे जानेके लिये दान माँगा। श्रीराधाने श्रीकृष्णको अनेक प्रकारसे समझाया कि वे यह सामग्री यज्ञभगवान्‌को अर्पित करने जा रही हैं, इसमें जूठन नहीं पड़ा करती, परंतु इनके तर्कको नकारकर श्रीकृष्ण अपने हठपर अड़े रहे। विलम्ब होते देख श्रीराधाने अपना कण्ठहार दानस्वरूप देकर समझौता कर लिया। कहा जाता है कि इस लीलाके माध्यमसे व्रजमें उनका यह प्रथम मिलन था।

यहाँसे परिक्रमामें प्रवेशकर ढाई किमी० की दूरीपर आन्यौर ग्राम पारकर भगवान्‌की लीलाओंके मुख्य साक्षी संकर्षणकुण्ड, गौरीकुण्ड, नीपकुण्ड, गोविन्दकुण्ड तथा गन्धर्वकुण्ड होते हुए यात्री श्रीगणेशमन्दिर, श्रीगिरिराज-मन्दिर, नृसिंहमन्दिरके दर्शन करते हुए पूछरी ग्राममें पहुँचते हैं।

पूछरी—यहाँ श्रीकृष्णके प्रिय सखा लौठाजीका मन्दिर है। कहा जाता है कि लौठाजीने सदा-सर्वदा व्रजमें निवास करनेकी इच्छा प्रकट की थी। अपने सखाकी इच्छा पूर्ण होनेका वरदान देते हुए श्रीकृष्णने उन्हें भजनाविष्ट-अवस्थामें इसी स्थानपर स्थापित कर दिया था। इस मन्दिरके समीप नृसिंहदेवमन्दिर, अप्सराविहारी तथा कुण्डेश्वर महादेवजीके मन्दिर दर्शनीय हैं। इन्हींके मध्यमें अप्सराकुण्ड है। कहा जाता है कि देवराज इन्द्रने जब श्रीकृष्णका अभिषेक किया था, उस समय स्वर्गलोकसे अप्सराओंने आकर इसी स्थानपर नृत्य किया था। इस कुण्डके समीप नवलकुण्ड शोभायमान है। यहाँसे थोड़ा आगे गिरिराजके शिखरपर श्रीदाऊजीका मन्दिर है। इसमें एक शिलापर सातवर्षीय श्रीकृष्णके चरणचिह्न अंकित हैं। यहींपर सुरभिकुण्ड तथा ऐरावतकुण्ड हैं। इसीके समीप कदम्बखण्डी विराजमान है। कहा जाता है कि प्रिया-प्रियतम इस स्थानपर रास रचाया करते थे।

परिक्रमामार्गमें अग्रसर होते हुए जतीपुरा ग्राममें मुखारविन्दके दर्शन होते हैं। यहाँसे माडकुण्ड, बिलछुकुण्ड तथा सूरजकुण्ड होते हुए गोवर्धनग्राम पहुँचकर श्रीराधाकुण्डकी परिक्रमामें प्रवेश करते हैं। गोवर्धनके मुख्य बाजारमें प्रवेशकर श्रीमानसीगंगाके दर्शन करते हुए श्रीराधाकुण्डकी ओर अग्रसर होते हैं। चलते-चलते सखीकुण्ड और श्रीराम-आश्रमके मध्यमें गोशालाके

दर्शन करते हुए अनेकों प्राचीन मन्दिरोंकी परिक्रमाकर माल्हारी एवं शिवोधरकुण्ड होते हुए प्रसिद्धतम श्रीगौड़ीयमठ, श्रीरघुनाथगोस्वामीकी समाधि प्रभुकुंज, भानुपोखर, बलरामकुण्ड, ललिताकुण्ड, गोपकुआँ, बनखण्डीमहादेव तथा मदनमोहन-मन्दिरके समीप स्थित श्रीराधाकुण्ड और श्रीकृष्णकुण्डके दर्शन प्राप्त होते हैं।

श्रीकृष्णकुण्ड तथा श्रीराधाकुण्डकी उत्पत्तिकथा

श्रीकृष्णकुण्ड—एक समयकी बात है, श्रीकृष्णके प्राण हरनेकी दृष्टिसे कंसने वृषासुर (अरिष्टासुर) नामक दैत्यको व्रजमें भेजा था, जिसके मुखकी आकृति बैल (गोवंश)-जैसी थी। श्रीकृष्णने उसका वध कर दिया और थकान मिटानेके लिये रास करनेकी इच्छा हुई। उन्होंने श्रीराधाका स्मरण किया, श्रीराधा अपनी सखियोंके संग श्रीकृष्णके पास पहुँच गयीं। उन्होंने रासनृत्यका प्रस्ताव किया, परंतु श्रीराधाने वृषरूपधारीका वध करनेका पाप श्रीकृष्णपर लगाकर रासमें भाग लेना अस्वीकार कर दिया। श्रीकृष्णद्वारा इस पापसे मुक्तिका उपाय पूछनेपर श्रीराधाने कहा—पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे इस पापसे मुक्ति मिल सकती है।

श्रीकृष्णने उसी समय समस्त तीर्थोंको प्रकट होनेका आदेश दे, अपने चरणाघातसे एक कुण्डका निर्माणकर इन तीर्थोंको उसमें प्रवेश करा दिया। तत्पश्चात् उसमें स्नानकर श्रीकृष्ण पापमुक्त हुए। इस कुण्डका नाम श्रीकृष्णके नामपर 'कृष्णकुण्ड' रखा गया।

श्रीराधाकुण्ड—श्रीराधारानीकी सखियोंने इस कुण्डके समीप एक और कुण्डके निर्माणका विचार श्रीराधाके समक्ष रखा। श्रीराधाने अपनी सखियोंकी इच्छाका सम्मान करते हुए अपने अँगूठेके नखसे पृथ्वीमाताकी मिट्टी खुरच-खुरचकर एक कुण्डका निर्माण कर दिया। सखियोंने इसका नाम 'राधाकुण्ड' रख दिया। श्याम (कृष्ण)-कुण्डमें विराजमान समस्त तीर्थोंने श्रीराधारानीसे उनके द्वारा निर्मित कुण्डमें स्थायी निवास करनेकी प्रार्थना की। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर श्रीराधाने उन तीर्थोंको अपने कुण्डमें स्थायी निवास करनेकी आज्ञा प्रदान कर दी। भक्तोंका विश्वास है कि आज भी समस्त तीर्थ इस कुण्डमें विराजमान हैं। श्रीराधाकुण्डमें स्नान करनेसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्यलाभ मिलता है।

यहाँसे परिक्रमामें आगे चलते हुए जगद्धात्री देवीमन्दिर, ग्वालियर-मन्दिर तथा हनुमत्-मन्दिर होते हुए कुसुमसरोवरके दर्शन प्राप्त होते हैं।

कुसुमसरोवर—यह सरोवर श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका साक्षी है। उस समय यह क्षेत्र विभिन्न प्रकारके रंग-बिरंगे सुगन्धित पुष्पोंसे सुशोभित उद्यानोंसे घिरा हुआ था। यहाँ श्रीकृष्ण अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधाके शृंगारके लिये मालाएँ गूँथा करते थे और श्रीराधा भी अपने मोहनके लिये पुष्पहार बनाया करती थीं। इस सरोवरकी शोभाके साथ-साथ विशाल गुम्बदोंमें परिलक्षित चित्रकारीके माध्यमसे श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंके दर्शन होते हैं। इन गुम्बदोंके मध्यमें नीचे शिलापर श्रीराधाचरणके भी दर्शन होते हैं। इस सरोवरके बायें तटपर उद्धवघाट स्थित है, जहाँ व्रजगोपियोंकी चरणरज-प्राप्तिहेतु गुल्मलतारूपमें श्रीउद्धवजी भजनाविष्ट-अवस्थामें आज भी विराजमान हैं।

श्रीगिरिराज गोवर्धनपरिक्रमाके अन्तिम चरणकी ओर अग्रसर होते हुए यात्रीगण घने वनों और उपवनोंके मध्य बाबा गोरधननाथजीके संग-संग चलते हुए परम पवित्र श्रीनारदकुण्डके दर्शन करते हुए सन्तनिवास हरी गोकुल, कल्लोलकुण्ड तथा श्रीराधामदनमोहन-सेवा आश्रम और उसके समीपस्थित श्रीहनुमत्-मन्दिरको प्रणाम करते हुए दानघाटी, गोवर्धनग्राम पहुँचकर परिक्रमा पूर्ण करते हैं।

परिक्रमा पूर्ण होनेपर श्रीमानसी-गंगामें स्नान तथा दानघाटी स्थित श्रीगोरधननाथ-मन्दिरमें ठाकुरजीका दूधसे अभिषेक करनेका विशेष महत्त्व है।

सुभाषित-त्रिवेणी

मृत्यु क्या है ?
[What is Death?]

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः॥

गुणोंमें दोष देखना एकदम मृत्युके समान है। कठोर बोलना या निन्दा करना लक्ष्मीका वध है। सुननेकी इच्छाका अभाव या सेवाका अभाव, उतावलापन और आत्मप्रशंसा—ये तीन विद्याके शत्रु हैं।

To find faults with the virtuous is like courting death. To use harsh words or to denounce them is like killing Laksmi. The following three habits are inimical to learning: No desire to pay heed to the teacher or be at his service; restlessness and self-praise.

महाबलान् पश्य महानुभावान्
प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्।
राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान्
गतान्नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य॥

धन-धान्यादिसे परिपूर्ण पृथ्वीका शासन करके अन्तमें समस्त राज्य और विपुल भोगोंको यहीं छोड़कर यमराजके वशमें गये हुए बड़े-बड़े बलवान् एवं महानुभाव राजाओंकी ओर दृष्टि डालिये।

Think of the mighty kings who at the end of their glorious reins, leaving behind their kingdoms and the ultimate in luxury they had enjoyed, surrendered to Yamaraja. Their treasuries were full. They were powerful kings. Yet they could not escape death.

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या
उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति।
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति
चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति॥

राजन्! जिसको बड़े कष्टसे पाला-पोसा था, वह पुत्र जब मर जाता है तो मनुष्य उसे उठाकर तुरन्त अपने घरसे बाहर कर देते हैं। पहले तो इसके लिये बाल छितराये करुण स्वरमें विलाप करते हैं, फिर साधारण काठकी भाँति उसे जलती चितामें झोंक देते हैं।

Rajan! When a son brought up with loving care and effort dies, we take his body out of the home. We moan grievously, And, later like a log of wood we mount his body onto a pier into the flames.

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुङ्क्ते
वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र
पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः॥

मरे हुए मनुष्यका धन दूसरे लोग भोगते हैं, उसके शरीरकी धातुओंको पक्षी खाते हैं या आग जलाती है। यह मनुष्य पुण्य-पापसे बँधा हुआ इन्हीं दोनोंके साथ परलोकमें गमन करता है।

Others enjoy the wealth of the deceased. The birds pick at his bones or the fire devours it. Only the good deeds or the evil ones travel with him to the other world.

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः।
अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः॥

तात! बिना फल-फूलके वृक्षको जैसे पक्षी छोड़ देते हैं, उसी प्रकार उस प्रेतको उसके जातिवाले, सुहृद् और पुत्र चितामें छोड़कर लौट आते हैं।

Brother! As the birds desert a tree that does not bear fruit or flowers, a dead body is left to burn on the pyre by his sons, his kinsmen and other near and dear ones.

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयंकृतम्।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद् धर्मं संचिनुयाच्छनैः॥

अग्निमें डाले हुए ऐसे पुरुषके पीछे तो केवल उसका अपना किया हुआ बुरा या भला कर्म ही जाता है। इसलिये पुरुषको चाहिये कि वह धीरे-धीरे प्रयत्नपूर्वक धर्मका ही संग्रह करे।

The dead person who is left to burn carries nothing but his good or bad deeds to the other world. Therefore, a human being ought to gradually pile up the fruit of rightful activities.

[विदुरनीति ८।४, १४—१८]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८१, शक १९४६, सन् २०२४, सूर्य-दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २। २२ बजेतक	सोम	श्रवण रात्रिमें १२। ४२ बजेतक	२२ जुलाई	**अशून्यशयनव्रत, श्रावण सोमवारव्रत, सायन सिंहराशिका सूर्य** रात्रि १२। ५१ बजे।
द्वितीया ,, १२। २६ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, ११। २६ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११। २० बजेसे, **कुम्भराशि** दिनमें १२। ४ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें १२। ४ बजे।
तृतीया ,, १०। १६ बजेतक	बुध	शतभिषा ,, ९। ५८ बजेतक	२४ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। १२ बजे, **भद्रा** दिनमें १०। १६ बजेतक।
चतुर्थी ,, ७। ५४ बजेतक	गुरु	पू० भा० ,, ८। २१ बजेतक	२५ ,,	**मीनराशि** दिनमें २। ४५ बजेसे।
पंचमी प्रात: ५। २८ बजेतक	शुक्र	उ० भा० सायं ६। ४२ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। ५८ बजेसे, **मूल** सायं ६। ४२ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें १२। ३३ बजेतक	शनि	रेवती ,, ५। ३ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें १। ४६ बजेतक, **मेषराशि** सायं ५। ३ बजेसे, **पंचक समाप्त** सायं ५। ३ बजे।
अष्टमी ,, १०। १५ बजेतक	रवि	अश्वनी दिनमें ३। ३० बजेतक	२८ ,,	**मूल** समाप्त दिनमें ३। ३० बजे।
नवमी ,, ८। ११ बजेतक	सोम	भरणी ,, २। ११ बजेतक	२९ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें ७। ५४ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
दशमी सायं ६। २५ बजेतक	मंगल	कृत्तिका दिनमें १। ६ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** प्रात: ७। १९ बजेसे सायं ६। २५ बजेतक।
एकादशी दिनमें ४। ५८ बजेतक	बुध	रोहिणी ,, १२। २२ बजेतक	३१ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें १२। ११ बजेसे, **कामदा एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ३। ५७ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, १२। १ बजेतक	१ अगस्त	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, ३। २५ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, १२। ७ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें ३। २५ बजेसे रात्रिमें ३। २३ बजेतक।
चतुदर्शी ,, ३। २२ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, १२। ४४ बजेतक	३ ,,	**कर्कराशि** प्रात: ६। ३५ बजेसे, **आश्लेषामें सूर्य** दिनमें ११। २३ बजे।
अमावस्या ,, ३। ५१ बजेतक	रवि	पुष्य ,, १। ५० बजेतक	४ ,,	**अमावस्या, मूल** दिनमें १। ५० बजेसे।

सं० २०८१ शक १९४६, सन् २०२४, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, श्रावण-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ४। ४८ बजेतक	सोम	आश्लेषा दिनमें ३। २५ बजेतक	५ अगस्त	**सिंहराशि** दिनमें ३। २५ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
द्वितीया ,, ६। १३ बजेतक	मंगल	मघा सायं ५। २६ बजेतक	६ ,,	**धर्मसम्राट स्वामीकरपात्री-जयन्ती, मूल** सायं ५। २६ बजेतक।
तृतीया रात्रिमें ७। ५८ बजेतक	बुध	पू०फा० रात्रिमें ७। ४८ बजेतक	७ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें २। २६ बजेसे।
चतुथी ,, ९। ५६ बजेतक	गुरु	उ०फा० ,, १०। २१ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ८। ५७ बजेसे रात्रिमें ९। ५६ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १२। ० बजेतक	शुक्र	हस्त ,, १२। ५९ बजेतक	९ ,,	**नागपंचमी।**
षष्ठी ,, १। ५६ बजेतक	शनि	चित्रा रात्रिमें ३। ३० बजेतक	१० ,,	**तुलाराशि** दिनमें २। १५ बजेसे।
सप्तमी ,, ३। ३५ बजेतक	रवि	स्वाती अहोरात्र	११ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३। ३५ बजेसे, **गोस्वामी तुलसीदास-जयन्ती।**
अष्टमी रात्रिशेष ४। ५१ बजेतक	सोम	स्वाती प्रात: ५। ४४ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें ४। १३ बजेतक, **वृश्चिकराशि,** रात्रिमें १। ७ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
नवमी अहोरात्र	मंगल	विशाखा दिनमें ७। ३५ बजेतक	१३ ,,	× × × ×
नवमी प्रात: ५। ४१ बजेतक	बुध	अनुराधा ,, ९। ०० बजेतक	१४ ,,	**मूल** दिनमें ९। ० बजेसे।
दशमी ,, ६। ० बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ,, ९। ५५ बजेतक	१५ ,,	**स्वतन्त्रता दिवस, भद्रा** सायं ५। ५३ बजेसे, **धनुराशि** दिनमें ९। ५५ बजेसे, **पुत्रदाएकादशीव्रत (स्मार्त्त)।**
एकादशी प्रात: ५। ४५ बजेतक	शुक्र	मूल ,, १०। १७ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** प्रात: ५। ४५ बजेतक, **एकादशीव्रत (वैष्णव), मूल** दिनमें १०। १७ बजेतक।
त्रयोदशी रात्रिमें ३। ५४ बजेतक	शनि	पू०षा० ,, १०। १२ बजेतक	१७ ,,	**शनिप्रदोषव्रत, मकरराशि** दिनमें ४। ५ बजेसे, **सिंहसंक्रान्ति** दिनमें १०। ९ बजे।
चतुर्दशी ,, २। २१ बजेतक	रवि	उ०षा० ,, ९। ४१ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। २१ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १२। २८ बजेतक	सोम	श्रवण ,, ८। ५० बजेतक	१९ ,,	**पूर्णिमा, भद्रा** दिनमें १। २५ बजेतक, **कुम्भराशि** रात्रिमें ८। १३ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ८। १३ बजे, **श्रावण सोमवारव्रत।**

कृपानुभूति

विश्वास करो, वे सदैव साथमें हैं

प्रभुकी इच्छासे आठ ज्योतिर्लिंगके दर्शन तो हो गये थे, बचे चारके दर्शन करनेकी कामना भोलेनाथसे प्रतिदिन करता था कि 'हे आशुतोष! यदि उचित मानते हैं तो अपने शेष धामोंके भी दर्शन करा दें।' वैसे मैंने श्रीमल्लिकार्जुन, श्रीपरली वैद्यनाथ एवं घुश्मेश्वरजीके धामोंकी यात्रा-सारिणी तैयार कर ली थी और सोचा था कि समय मिला तो श्रीभीमाशंकरजीके भी दर्शन कर लेंगे। अधिक आयु (७२ वर्ष)-में अकेले जानेका साहस नहीं था। पत्नी शिथिल हो गयी हैं। साथमें सदा तत्पर रहनेवाले मित्र पाण्डेयजी ही जा सकते थे। दर्शनके लिये मन बेचैन था। एक दिन भोरमें निद्रामें ही पाण्डेयजीका परिचित स्वर सुनायी दिया 'टिकट कटवा लिया है?' चौंककर उठ बैठा, उनको तो अभी यात्रा-कार्यक्रम बताया नहीं है, तो फिर निद्रामें यह प्रश्न क्यों? नित्य पूजनके बाद पाण्डेयजीको फोनपर बताया। उन्होंने कहा 'जहाँ कहो, चलेंगे।' उनकी सहमति पाकर मैंने सभी जगहका आरक्षण करा लिया। हमलोग आन्ध्र एवं महाराष्ट्र कभी गये नहीं थे, परंतु विश्वास था कि यात्रा तो बाबाके मार्गनिर्देशनमें होगी।

१९ फरवरी, सन् २०१३ ई० को रवाना होकर अगले दिन रात्रि ११ बजे काँचीगुडा पहुँचे। अनजान जगह थी, विचार हुआ कि स्टेशनपर ही रात्रि-विश्राम करें, परंतु सामने ट्रेवेल एजेन्सी दिखी। लोग हिन्दी समझ लेते हैं परंतु बोलनेमें कठिनाई होती है। एजेन्सीमें बताया गया कि केवल सरकारी बस ही श्रीशैलम् जाती है। बस-अड्डे जाओ। रात्रि १२.३० का समय था, ऑटो बहुत कम थे, बस स्टेशन ६ कि०मी० दूर, रास्ता पता नहीं, तभी एक ऑटो आकर रुका। चालक सरदारजीने ४० रुपयेमें बस-स्टेशन पहुँचाया। पूछताछ-पटलपर नशेमें चूर, पर जागते कर्मीने पूछनेपर केवल 'तीस नम्बर' कहा। मैंने अनुमान लगाया कि तीस नम्बर बस प्लेटफार्म कह रहा है। तीस नम्बरपर खड़े एक कण्डक्टरसे पूछा कि श्रीशैलम्के लिये बस कब है? उसने कहा टिकट २०४। बस कहाँ है? (Where is bus?) कहनेपर उसने पास खड़ी बसकी ओर इशारा किया। दो टिकट लेकर हम बसमें बैठ गये और जोरसे बोले 'बाबा मल्लिकार्जुनकी जय!' लग रही भूख एवं थकान सब गायब। दो बजे रात्रिमें चलकर घने वनों (टाईगर रिजर्व) एवं पहाड़ोंके बीच होते हुए प्रातः ९ बजे हम लोग श्रीशैलम् पर्वतपर पहुँच गये। हम लोगोंको बाबाने कहीं रुकने नहीं दिया। यात्रियोंको देखकर एक साधू कह रहा था, महँगा रूम सामने, सस्ता गंगा-निवास। उसको दो रुपयेका सिक्का दिया। यह बाबाका संकेत जो था। गंगा-निवासमें कर्मचारीने बिना कुछ बोले या लिखे कमरेकी चाभी देकर सामनेकी इमारतकी ओर संकेत किया और चला गया। हम शंकर बाबाकी लीला समझ चुप रहे। वहाँ जाकर चाभीपर जो नम्बर लिखा था, उसी रूमका ताला खोला। बाबाको प्रणाम किया। स्नान-ध्यान करनेके बाद श्रीमल्लिकार्जुन भगवान्के दर्शन एकदम एकान्तमें हुए। पाँच बार सुन्दर दर्शन हुए, अगले दिन सायं ५ बजेतक वापस काँचीगुडा आ गये। किंचित् कठिनाई बिना।

हैदराबाद रेलवे स्टेशनसे रात्रि ९ बजे पैसेन्जरसे चलकर प्रातः ७ बजे परली वैद्यनाथ स्टेशन पहुँचे। साधारण-सा छोटा कस्बा। २ किलोमीटरपर साधारण-सा मन्दिर। बगलमें ही स्नान आदिकी व्यवस्था, एक होटल, एकान्तमें सुखद दर्शन हुए। मन्दिरमें २ घण्टे रहनेके पश्चात् बस स्टेशन आ गये। औरंगाबादके लिये बस तैयार थी। २६३ कि०मी० की दूरी तयकर ३ बजे औरंगाबाद बस स्टेशन पहुँचे। बाबाका प्रबन्ध, सामने ही कनन्शा गाँवके लिये बस खड़ी है। कण्डक्टरने बताया यह बस श्रीघुश्मेश्वर मन्दिरके लिये है। मन्दिर विशाल, पुरुष कमीज-बनियाईन उतारकर ही प्रवेश करते हैं। महादेवजीकी अद्भुत छटा, तीन ज्योतिर्लिंगका कार्यक्रम

पूरा हुआ। बाबा आपको अनेक धन्यवाद! बाबाके सामनेसे हटनेका मन नहीं हो रहा था। समय आगे बढ़ा। शाम सात बजेतक औरंगाबाद बस स्टेशनपर आ गये। अब क्या यहाँ रुका जायगा? कानपुर वापसीमें तो तीन दिनका समय है। मैंने पाण्डेयजीसे कहा, 'समय हाथमें है, पूना चलें, बाबा भीमाशंकरजी भी दर्शन देना चाहते हैं।' एक लड़का 'पूना-पूना' कहते सामने आया। उसको पास बैठाया और पूछा—पूनासे श्रीभीमाशंकरजी कैसे पहुँचें? उसने बताया मेरी बससे १५० रुपयेमें पूनाके शिवाजी बस स्टैण्ड पहुँचिये, वहाँसे हर घण्टे सरकारी बस मन्दिर जाती है। उससे टिकट लिया। तीन दिनसे चाय-पानीपर ही चल रहा था। आज रात उत्तर भारतीय भोजन मिला।

प्रातः ५ बजे हम लोग पूना पहुँचे। ५.३० बजे प्रातः बससे भगवान् भीमाशंकरके दर्शन करने चले। घने जंगलों, खूबसूरत दृश्योंके बीच होते हुए ९ बजे श्रीभीमाशंकर पहुँचे। रोम-रोम पुलकित हो रहा था। कड़ीमें अन्तिम ज्योतिर्लिंगके भी दर्शन होने जा रहे हैं। बहुत छोटी बस्ती, प्रसादकी १०-१५ दुकानें, २ भोजनालय, एक मुम्बईवालोंकी पुरानी धर्मशाला। स्नान आदि धर्मशालामें करके चले। पहाड़ चारों ओर। कई चौड़ी सीढ़ियाँ उतरकर पहाड़के गर्भमें पुरातन शैलीका मन्दिर। बाबाके सामने खड़े, आँसुओंके साथ रोमांच भी। सोचा भी नहीं था, कभी अनुमान भी नहीं लगा सकते थे कि इस उम्रमें इतनी दूर आकर हम लोग बाबाके दर्शन करेंगे। पूर्ण प्राकृतिक वातावरण। बहुत देरतक ध्यानमें लीन। भोजनकर धर्मशाला आये। रखवाली एक दादाजी करते हैं। हमलोगोंने रात्रि-विश्राम यहीं करनेकी इच्छा बतायी। दादाजी बोले केवल ३०० रुपयेमें कमरा। जमीनपर एक पोलीथीन बिछा। न चारपाई, न गद्दा आदि। सब मंजूर। आज रात्रि यहीं रहेंगे। बहुत सुन्दर वातावरण था, कई बार दर्शन हुए। पाण्डेयजी बोले मुझे श्रीत्रयम्बकेश्वरजीके दर्शन कराओ, अभी समय है। प्रातः ८.३० की बससे चलकर बीचमें एक बार बस बदलकर नासिक होते रात्रि ९ बजे त्रयम्बकेश्वरजी पहुँचे। बाबाका यहाँ भी पूर्व प्रबन्ध था। बससे उतरते ही एक युवक बोला—'दादाजी! आइये, मन्दिरके पास रूम २०० रुपयेमें।' बिना कुछ और पूछे हमलोग पीछे-पीछे चल दिये। साफ-सुथरा कमरा। रात्रिमें ही दर्शन। प्रातः पुनः दर्शन। मेरा यहाँ दूसरी बार आना था। बाबाको अनेक-अनेक धन्यवाद देकर वापस चले, नासिक होकर सायं चार बजे मनमाड रेलवे स्टेशन पहुँचे। दूसरे दिन यहींसे कानपुर वापसी थी। महादेवजीका एक चमत्कार यहाँ भी हुआ।

मनमाड स्टेशनपर ही चाय पीकर मैंने पाण्डेयजीसे बाहर जाकर कोई होटल-लॉज देखनेको कहा, जहाँ रात्रि-विश्राम हो सके। अभी स्टेशनकी सीढ़ीपर पाण्डेयजी चढ़े थे कि एक अधेड़ सरदारजी मिल गये। उनसे होटलके बारेमें पूछा। वे बोले आप सीधे गुरुद्वारा चले जाओ। २ कि० मी० दूर है। आरामसे रहो और प्रसाद पाओ। कोई चिन्ता न करना। पाण्डेयजी वापस मेरे पास आये और बताया। मैंने सहमति दी और बैग लेकर चले उसी पुलसे, परंतु सरदारजीका कहीं पता नहीं। विशाल गुरुद्वारापर वृद्ध सेवाकार खड़े थे। हमलोगोंको देख आगे बढ़कर बोले—'आओ जी, आपका तो हम इन्तजार कर रहे थे।' झिझककर मैंने कहा, 'पापाजी! बात तो सुनिये।' वे तुरंत बोले, 'अजी! सब पता है। कल आपको वतनके लिये गाड़ी पकड़नी है। अन्दर जाओ दरीपर आराम करो। सब इन्तजाम होगा।' स्नानकर एक घण्टे गुरुवाणीका श्रवण किया। रात्रिमें लंगर छका और कमरेमें सोये। प्रातः निवृत्त होकर हजूर साहबके दरबारमें ध्यान किया। भोजनके आग्रहको धन्यवाद देकर वापस स्टेशन आ गये। अपराह्न १ बजे पुष्पक एक्सप्रेससे कानपुर, घरके लिये चल दिये। यह लम्बी यात्रा इतनी सरलतासे पूर्ण हो गयी। कारण, यह विश्वास था कि वे हमेशा साथ रहते हैं। जय हो भोले भण्डारीकी! [**एक भक्त**]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

राष्ट्रिय चरित्र

सन् १९४६ ई० की बात है, मुझे इंग्लैण्ड जाना पड़ा और वहाँ फोरस्ट हिल नामक लन्दनकी बस्तीमें एक अंग्रेज-कुटुम्बमें रहना पड़ा। यह समय दूसरे विश्वयुद्धके पश्चात् लगभग तुरन्तका था। मैं जहाँ रहता था, उस अंग्रेज-परिवारमें पति-पत्नी और एक बारह वर्षकी उनकी पुत्री—इस प्रकार तीन प्राणी थे। पुरुष अध्यापक थे। लड़की पढ़ने जाती और स्त्री घर सँभालती।

एक दिन वहाँकी काउण्टी काउन्सिल (नगर-पालिका-जैसी संस्था)-से एक पत्र आया कि लड़ाईके समय अमुक दिन, अमुक स्थानपर बम गिरा, जिसके कारण तुम्हारे घरके पिछले भागमें क्षति हुई है, तो उसकी मरम्मत करानेके खर्चका अनुमान लगाकर आँकड़ा हमें भेज दो, जिससे मरम्मत करायी जा सके।

दूसरे दिन वे शिक्षक अपने साथ एक मकानके ठेकेदारको ले आये। तत्पश्चात् हम घरके पिछले भागमें गये। उस ठेकेदारने कितनी ईंटें लगेंगी, कितनी ऊँची दीवाल बनेगी, कैसा रंग होगा? यह सब अनुमान लगा दिया। उस ठेकेदारको दूसरे दिन आँकड़ा भेजनेको कहकर उन्होंने विदा किया।

दूसरे दिन सायंकालकी डाकसे उस ठेकेदारका टाइप किया पक्का आँकड़ा आ गया तो उन शिक्षक भाईने उसे पत्रके साथ काउण्टी काउन्सिलको कार्यान्वयनहेतु भेज दिया।

चार दिन बाद काउण्टी काउन्सिलसे पत्र आया कि तुम वह काम करा लेना और काम होनेपर बिल भेज देना। इस प्रकार उस ठेकेदारको काम सौंप दिया गया और काउण्टी काउन्सिलद्वारा बिल भुगतान हो गया। यह सब इतनी सरलता, स्वच्छता और शीघ्रतासे हुआ कि मुझे बहुत आश्चर्य हुआ, कारण कि अपने यहाँ भारतमें सरकारी कार्यमें देखभालमें ही कितना समय लगा देते हैं। जितना अधिक समय लगता है, पैसा भी उतना ही अधिक लगता है। अनेक प्रकारके भ्रष्टाचारोंके कारण सरलता और स्वच्छता कैसे रहेगी?

इसी प्रकारका एक और प्रसंग है। है तो बहुत छोटा, परंतु बहुत कामका है। राष्ट्रकी कठिनाईके समय राष्ट्रके नागरिकके क्या भाव होने चाहिये, यह प्रत्यक्ष इस प्रसंगमें बताया गया है।

एक दिन दिसम्बर या जनवरी १९४६ को प्रातः बहुत बरफ पड़ी। जिन बहनके यहाँ मैं रहता था, उन बहनने मुझसे कहा—'आज तुम बाहर मत जाना, परंतु कमरेमें ही कुछ पढ़ना। मैं तुम्हें ११ बजे कॉफी बनाकर दूँगी और यह हीटर रख देती हूँ। बारह बजते ही इसे बन्द कर देना; क्योंकि रेडियोपर प्रसारित हुआ था कि १२ से ४ बजेतक हीटर आदि बिजलीकी कमीके कारण नहीं जलाने चाहिये।'

उस बहनके कथनानुसार काफी पीनेके पश्चात् मैं पढ़नेमें तल्लीन था और हीटरकी गर्मीसे वातावरण भी अनुकूल था, इससे समयका ध्यान नहीं रहा। वहीं १२-२० पर उन बहनने दरवाजा खोला और हीटरको देखकर बोलीं—'अरे! यह क्या? तुमने हीटर १२ बजे बन्द नहीं किया।' उनकी आवाजमें थोड़ी नवीनता और उपालम्भ दोनों लगे, इससे अपने विनोदी स्वभाववश मैंने उत्तर दिया—'इसमें क्या हो गया? यहाँ कौन चेक करने आ रहा है?' यह सुनकर उन बहनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी और वे बोलीं—'सरकार सबके यहाँ चौकी-पहरा थोड़े देगी? एक सूचना रेडियो या समाचारपत्रद्वारा दे दी जाय, वही सबको मान्य रखनी चाहिये। सभी नागरिक ऐसा करेंगे, तभी देशका काम-काज अच्छी तरह चलेगा।'

मैं इस गम्भीरताको सानन्द, किंतु आश्चर्यपूर्वक देखता रहा। तुरन्त मैंने हीटर बन्द किया और कहा—'मुझसे वास्तवमें अपराध हुआ है। मुझे पढ़नेमें समयका ध्यान नहीं रहा। मुझे १२ बजे ही हीटर बन्द कर देना था।' उन बहनने अपने अश्रु पोंछे और मेरी ओर प्रसन्न चित्तसे देखती हुई वे कमरेसे बाहर चली गयीं।

[श्रीउषाकान्तजी देसाई]

(२)

धोबीकी ईमानदारी

बात वर्ष २०१३ के मार्च महीनेकी है। मैं सदैवकी भाँति अपने निवासस्थान ब्रह्मपुरी, बेगूँ (चित्तौड़गढ़)-से घनोरा-स्थित अपने विद्यालय गया था। मेरे कक्षमें प्रक्षालित तथा अप्रक्षालित कपड़े हैंगरोंपर टँगे थे। मुझे विद्यालयसे घर आनेमें सायंकाल देर हो गयी। उसी बीच मेरी माताजीने सभी कपड़े धुले हुए समझकर इस्तरी (प्रेस) करनेहेतु धोबीको दे दिये और उसने भी बण्डल बनाकर अपनी गठरीमें अन्य ग्राहकोंके कपड़ोंके साथ रख लिये।

मेरी एक अनधुली पैण्टकी जेबमें २२७० रुपये थे। जब मैंने यह बात माताजीको बतायी तो वे यह सुनकर अवाक् रह गयीं। मैं उलटे पाँव धोबीकी दूकान तथा फिर उसके घर गया तो पता चला कि वह दूकान बन्द करके रिश्तेदारीमें मौत हो जानेसे आकोला (भीलवाड़ा) चला गया। अब मैं क्या करता! किंकर्तव्यविमूढ़ होकर घर वापस चला आया।

दो दिन बाद धोबी मेरे घरपर आया और मुझे २२७० रुपये देते हुए मेरी माताजीसे कहा कि माताजी, कपड़े मुझे देनेसे पहले जेबोंको तो सँभाल लिया करो, भाई साहबके पैण्टमें ये रुपये थे, गिन लो पूरे हैं या नहीं?

मेरी माताजी उसे ७० रुपये मिठाईहेतु देने लगीं, पर उसने रुपये लेनेसे यह कहते हुए इनकार कर दिया कि यह तो मेरा फर्ज था। गरीबीमें भी उसने (धोबीने) जो ईमानदारीकी अनोखी मिसाल कायम की, वह आजके युगमें एक आश्चर्य ही है! [**श्रीउमेशकुमारजी शर्मा**]

(३)

अधिकारीका वास्तविक स्वरूप

रायकाभाई रबारीकी नीतिमत्ता सारे देशमें प्रसिद्ध थी। उनके जैसा प्रामाणिक और व्यवहारकुशल व्यक्ति मिलना कठिन था। इसलिये किसीने महाराज मल्हारराव होल्करसे कहा कि आप उन्हें अपना अधिकारी बना लें तो सच्चे रूपमें प्रामाणिकताका प्रचार देशमें होगा।

यह बात महाराजके गले उतरी और उसपर विचार हुआ। रायकाभाई वैसे ही ईमानदार व्यक्ति हैं और ऐसा सुन्दर अवसर मिल जाय फिर तो कहना ही क्या? थोड़े गिने-चुने दिनोंमें ही उनके सफल व्यक्तित्वकी छाप सम्पूर्ण देशमें पड़ गयी, परंतु अन्य अधिकारियोंने रायकाभाईके विरुद्ध महाराजके कान भरने प्रारम्भ किये। प्रतिदिन सायंकाल नगरके बाहर एक झोपड़ीमें रायकाभाई आते, यह उनका नित्यका क्रम था। इसमें किसी दिन नियम-भंग नहीं होता था। अन्य अधिकारियोंको यह बहाना मिल गया। प्रतिदिनकी शिकायतोंसे महाराजको भी सन्देह हो गया कि अन्ततः नित्यप्रति गाँवके बाहर इस झोपड़ीमें जानेका कारण क्या है?

एक दिन अधिकारियोंके साथ ही उन्होंने रायकाभाईका पीछा किया। सभी चारों ओर छिप गये और ज्यों ही रायकाभाई झोपड़ीसे बाहर आये त्यों ही महाराज मल्हारराव ने सामने आकर कहा—'सम्पत्ति छिपानेके लिये यहाँतक आना पड़ता है?'

रायकाभाई तो चतुर व्यक्ति थे। उन्होंने उत्तर दिया—'सम्पत्ति छिपाने नहीं, छिपायी हुई सम्पत्तिका पता लगाने आना पड़ता है।'

महाराजको महान् आश्चर्य हुआ। एक अधिकारीका इतना साहस? और इसपर भी प्रत्युत्तर? उन्होंने आँखें कड़ी कीं—'चलिये, अधिकारी महोदय! बताइये वह छिपायी हुई सम्पत्ति, मैं भी तो देखूँ कि मेरे अधिकारीगण किस प्रकार सम्पत्ति-संग्रह करते हैं और किस प्रकार सुरक्षित रखते हैं?'

सब अन्दर गये। अन्दर एक बक्स था। रायकाभाईने उसे खोला। एक विचित्र दुर्गन्ध वहाँ फैल गयी। सबने नाक बन्द की। बक्सेमें देखा तो रायकाभाईके पुराने असली कपड़े थे। रायकाभाईने बहुत ही नम्रतासे कहा—'यह मेरी वास्तविक पोशाक है। यहाँ मैं प्रतिदिन आता हूँ और इन कपड़ोंको देखकर अपनी वास्तविकताको स्मरण कर लेता हूँ। यह मेरा पुराना वस्त्र ही मेरा गुरु

है, जो मुझे सदा मेरे सच्चे स्वरूपका स्मरण दिलाता है।' अन्य अधिकारियोंके मुख म्लान पड़ गये। महाराज मल्हारावने रायकाभाईकी पीठ थपथपाकर अभिनन्दन किया और धन्यवाद दिया। आज भी कड़ी गाँवके समीप दो स्मृतिभवन खड़े हैं। एक रायकाभाईकी स्मृतिमें और दूसरा उनके गुरु—उनके कपड़ोंकी स्मृतिमें।

—'**अखण्ड आनन्द**'

(४)

कर्तव्यनिष्ठा

घटना पंजाबकी है। बैंकसे रुपये निकलवानेके लिये मैं अनाज मण्डीस्थित पंजाब एण्ड सिन्ध बैंक जालन्धरमें गयी थी। सोमवारकी सुबहके कारण बैंकमें काफी भीड़ थी। नकद निकासी कक्ष (कैश-काउण्टर)-पर एक अधेड़ उम्रका पगड़ीधारी सिख कर्मचारी, कैशियर (खजांची)-के तौरपर रुपयोंका लेन-देन कर रहा था। कक्षके सामने रुपये जमा करवानेवाले तथा रुपये निकलवानेवाले ग्राहकोंकी एक लम्बी पंक्ति लगी थी। दोपहर लगभग ११ बजेका समय था। तभी कैश-काउण्टरके खजांचीके पास रखा हुआ उसका मोबाइल फोन बजने लगा। खजांचीने उसपर ध्यान न देते हुए ग्राहकोंके साथ रुपयोंका लेन-देन जारी रखा, लेकिन वह मोबाइल बजना बन्द नहीं हुआ और बार-बार बजता रहा, जिस कारण पंक्तिमें खड़े ग्राहक भी परेशान होने लगे। ग्राहकोंके आग्रह करनेपर खजांचीने मोबाइल फोन कानसे लगाया और बात करने लगा। बात करते समय अचानक उस व्यक्तिके चेहरेके भाव बदलने लगे, उसके माथेपर पसीना आने लगा और चेहरेका रंग पीला पड़ गया। उसके हाथ भी काँपने लगे। उसके शरीरमें हो रहे ये परिवर्तन स्पष्ट नजर आ रहे थे।

फोन बन्द करके उस व्यक्तिने जेबसे रूमाल निकाला और चेहरेका पसीना पोंछा। पास पड़ी पानीकी बोतलसे पानी पीया। एक मिनटके लिये आँखें बन्द करके लम्बी साँस ली। फिर दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा, 'वाहे गुरु! मेहर रखीं'। यह कहकर वह खजांची पहले-जैसे सामान्य भावसे अपना कार्य करने लगा। बड़ी फुर्तीसे उसने सामने पंक्तिमें खड़े ग्राहकोंको निपटाना शुरू कर दिया और १०-१५ मिनटमें सामने खड़े ग्राहकोंका लेन-देन निपटा दिया। फिर तिजोरीको ताला लगाया और उसकी चाबी लेकर वह संयत भावसे बैंक मैनेजरके कक्षमें गया। उसने तिजोरीकी चाबी मैनेजरको सौंपी और बताया कि उसका जवान बेटा अमृतसरसे जालन्धर आ रही बसमें यात्रा कर रहा था और अभी कुछ ही समयमें जालन्धर पहुँचनेवाला था कि रास्तेमें वह बस एक ट्रकसे टकराकर दुर्घटनाग्रस्त हो गयी है। बस-यात्रियोंको काफी चोटें आयी हैं और कुछ यात्रियोंकी हालत तो गम्भीर है। उन यात्रियोंमें उस खजांचीका बेटा भी है, जिसे सरकारी सहायतासे अस्पताल पहुँचाया गया है।

यह सूचना उस खजांचीको मोबाइल फोनपर १०-१५ मिनट पहले प्राप्त हुई थी और वह अब छुट्टी लेकर अपने बेटेके पास अस्पताल जाना चाहता था। बैंक मैनेजरने उसे फौरन छुट्टी दे दी और वह कर्मचारी बैंकसे बाहर निकला। बाहर उसका स्कूटर खड़ा था, जिसपर सवार होकर वह चला गया। तब बैंक मैनेजरने कक्षसे बाहर आकर सभी उपस्थित लोगोंको यह बात बतायी।

बेटेके दुर्घटनाग्रस्त होकर गम्भीर हालतमें अस्पताल पहुँचने-जैसी सूचना मिलनेपर भी उस बैंक कर्मचारीने शान्तिपूर्वक अविचल भावसे सभी ग्राहकोंका लेन-देन निपटाकर अपना कर्तव्य पूरा किया। इतनी विषम परिस्थितिमें भी भावनाओंपर काबू रखते हुए मानसिक सन्तुलन बनाये रखा। आमतौरपर अधिकतर लोग विषम परिस्थितियोंमें असन्तुलित व्यवहार करते हुए कर्तव्य-पथसे विचलित हो जाते हैं, पर उस कर्मचारीने अपनी पारिवारिक प्रतिकूलताको अपनी व्यावसायिक कर्मनिष्ठापर हावी नहीं होने दिया। यह समाजके लिये अनुकरणीय उदाहरण है। ऐसे कर्मयोगी और उसकी कर्मनिष्ठाको नमन! [**प्रो० पूजा वशिष्टजी**]

मनन करने योग्य

भगवान्‌का पेट कब भरता है ?

(पं० श्रीगोविन्दजी बैजापुरकर)

प्राचीन कालकी बात है, एक परम शिवभक्त राजा था। एक दिन उसके मनमें विचार आया कि आगामी सोमवारको अपने इष्टदेव शंकरका हौद दूधसे लबालब भर दिया जाय। हौद काफी गहरा और चौड़ा था। उसने अपने प्रधानमन्त्रीसे मन्त्रणा की। उसने भी 'महाराज! आपका विचार बड़ा उत्तम है' कहकर लगे हाथ डुग्गी पिटवा दी—'सोमवारको सारे ग्वाले शहरका पूरा दूध लेकर मन्दिर चले आयें। हौद भरना है, राजाकी आज्ञा है। जो इसका उल्लंघन करेगा, वह कठोर दण्डका भागी होगा।'

सारे ग्वाले घबरा उठे। उस दिन किसीने घूँटभर भी दूध अपने बच्चोंको नहीं पिलाया। कुछने तो बछड़ोंको गायके थनमें मुँह लगाते ही छुड़ा लिया।

दूध आया और हौदमें छोड़ा गया। परंतु हौद भरा नहीं, थोड़ा खाली ही रह गया। राजा बड़ी चिन्तामें पड़ गया। इसी बीच एक बूढ़ी आयी। भक्ति-भावसे उसने लुटियाभर दूध चढ़ाकर भगवान्‌से कहा कि 'शहरभरके दूधके आगे मेरी लुटियाकी क्या बिसात! फिर भी भगवन्, मुझ बुढ़ियाकी श्रद्धाभरी ये दो बूँदें स्वीकार करो।'

दूध चढ़ाकर बुढ़िया बाहर निकल आयी। सभीने देखा—भगवान्‌का हौद एकाएक लबालब भर गया। उन्होंने राजासे जाकर कहा। राजाके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

दूसरे सोमवारको राजाने फिर वैसा ही आदेश दिया और गाँवभरका दूध महादेवके हौदमें छोड़ा गया, फिर भी हौद खाली ही रहा। पहलेकी तरह फिर वही बुढ़िया आयी और भगवान्‌से प्रार्थनाकर दूध अर्पित किया। उसकी लुटियाका दूध छोड़ते ही हौद भर गया। राजसेवकोंने राजाको जाकर सारा वृत्तान्त सुनाया।

राजाका आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया। अबकी बार उसने स्वयं उपस्थित होकर रहस्यका पता लगानेका निश्चय किया। तीसरा सोमवार आया और पुनः गाँवभरका दूध राजाने अपने सामने हौदमें डलवाया। परंतु हौद खाली ही रहा। इसी बीच बूढ़ी आयी और लुटियाका थोड़ा-सा दूध भगवान्‌को भक्ति भावसे निवेदित किया। आश्चर्य! उसके लुटिया उँड़ेलते ही हौद दूधसे लबालब भर गया! बुढ़िया पूजा करके निकल गयी।

राजा भी उसके पीछे हो लिया। कुछ दूर जानेके बाद उसने बुढ़ियाका हाथ पकड़ा। वह डरसे काँपने लगी। राजाने अभय दिया और हौदके भर जानेके रहस्यकी जिज्ञासा करते हुए कहा—'बताओ क्या बात है, तुमने कौन-सा जादू कर दिया, जो हौद एकाएक भर गया?'

बुढ़ियाने कहा—'बेटा! जादू-वादू कुछ नहीं। घरके बाल-बच्चों, ग्वालबालों—सभीको पिलाकर बचे दूधमेंसे एक लुटिया लेकर मैं आती हूँ। सभीको तृप्त करके शेष दूध भगवान्‌को चढ़ाते ही वे प्रसन्न हो जाते हैं, भावसे उसे ग्रहण करते हैं और हौद भर जाता है। किंतु तुम राजबलसे गाँवके सारे बाल-बच्चों, ग्वालबालों, रुग्ण-बूढ़ोंका पेट काटकर, उन्हें तड़पता रखकर सारा दूध अपने कब्जेमें करते और उसे भगवान्‌को चढ़ाते हो, तो उनकी आहसे भगवान् उसे ग्रहण नहीं करते। उतनेसे उनका पेट नहीं भरता। इसीलिये हौद खाली रह जाता है। प्राणिमात्रमें उसी परमात्माका वास है, उन्हें भूखा रखनेसे भगवान् भी भूखे रहते हैं।'

राजाको अपनी भूल समझमें आयी। वह बुढ़ियाको प्रणाम करके लौट गया और ऐसी हरकतोंसे विरत हो गया। उसे अब इस बातका ज्ञान हो चुका था कि भगवान्‌का पेट कब भरता है। [**प्राचीन कथाएँ**]

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित रंगीन चित्र-कथाएँ

[बायें पृष्ठपर चित्र तथा दाहिने पृष्ठपर कथा]

कोड 869 ₹ 25

कोड 870 ₹ 25

कोड 871 ₹ 25

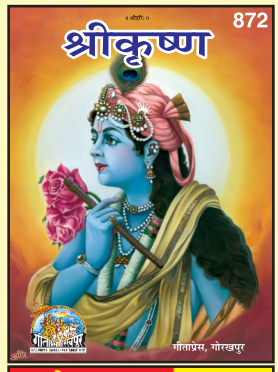

कोड 872 ₹ 25

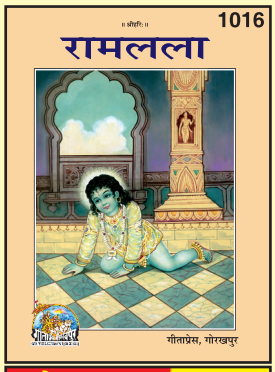

कोड 1016 ₹ 35

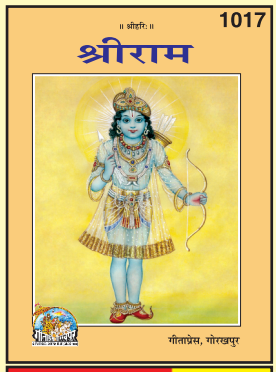

कोड 1017 ₹ 35

कोड 1116 ₹ 35

कोड 787 ₹ 35

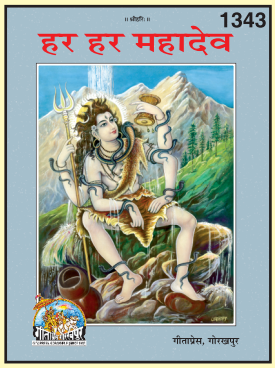

कोड 1343 ₹ 35

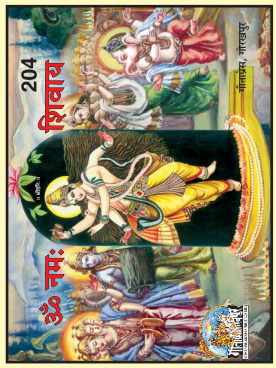

कोड 204 ₹ 35

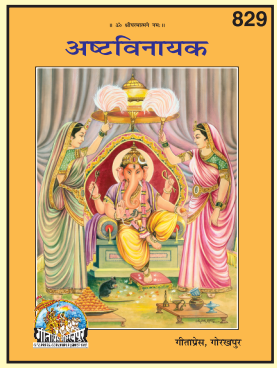

कोड 829 ₹ 25

कोड 868 ₹ 35

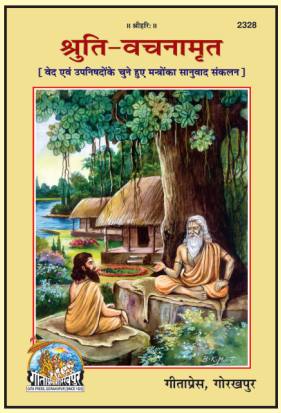

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

श्रुति वचनामृत (कोड 2328) पुस्तकाकार—प्राप्त श्रुतियोंसे विशेष उपयोगी लगभग सात सौ श्रुतिवाक्योंका सन्दर्भ सहित सुन्दर सानुवाद संकलन वेदान्तनिष्ठ तपस्वी श्रीभोलेबाबा द्वारा किया गया जिसे गीताप्रेससे पूर्वमें 'श्रुति-रत्नावली'के नामसे प्रकाशित किया गया था, जो बहुत दिनोंसे उपलब्ध नहीं थी, उक्त संकलनमें गोपालजी ब्रह्मचारी द्वारा बनायी गयी वर्णानुक्रमणिका सम्मिलित कर इसे नयी साज-सज्जाके साथ प्रकाशित किया गया है। इस संकलनमें मंगलाचरण, शांतिपाठ, कर्म, उपासना, सदाचार, जीव, ईश्वर, राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, सूर्य, गणपति, देवी, ज्ञान-वैराग्य, मनोरोग आदि विविध श्रुति वचनोंका संकलन है जो पाठकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। **मूल्य ₹ 40, डाकखर्च ₹30 अतिरिक्त।**

प्र० ति० 20-05-2024
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

कल्याणके सभी अंक निश्चित प्राप्त करनेके लिये

वार्षिक शुल्क ₹ 300+₹ 200 अतिरिक्त

[मासिक अंक रजिस्ट्रीसे भेजनेके लिये]

इस सुविधाका लाभ उठावें

अब कल्याणके मासिक अंकोंकी सूचना whatsApp पर भेजनेकी व्यवस्था कर दी गयी है। इसलिये अनुरोध है कि ऐसा मो०नं० जिसपर whatsApp की सुविधा हो, अपने ग्राहक-संख्या एवं नाम, पतेके साथ 'कल्याण-कार्यालय'से सम्पर्क कर उपलब्ध करा देवें। जिससे डाकघरसे सम्पर्क कर अंक प्राप्त करनेमें सुविधा होगी।

नवीन विशिष्ट प्रकाशन—शीघ्र प्रकाश्य

चित्रमय श्रीमद्भगवद्गीता, 'गीता-प्रबोधनी' टीका कोड 2335, ग्रंथाकार, चार रंगोंमें, आर्ट पेपरपर—जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर **चित्रमय श्रीरामचरितमानस कोड 2295, सं० चित्रमय शिवपुराण कोड 2318, चित्रमय श्रीमद्भगवद्गीता कोड 2267, चित्रमय श्रीदुर्गासप्तशती कोड 2304, चित्रमय सुन्दरकाण्ड कोड 2311** की तरह 138 से अधिक प्रसंगानुकूल आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ **चित्रमय श्रीमद्भगवद्गीता, 'गीता-प्रबोधनी'** टीकाके साथ प्रकाशित करनेकी योजना है। प्रस्तुत ग्रंथमें गीताके मूल श्लोक एवं अर्थके साथ संक्षिप्त व्याख्या दी गयी है। परन्तु सभी श्लोकोंकी व्याख्या नहीं दी गयी है। अनेक श्लोकोंका केवल अर्थ दिया गया है। टीकाको संक्षिप्त बनानेकी दृष्टि रहनेसे व्याख्याका विस्तार करनेमें संकोच किया गया है। अतः साधकको यदि किसी व्याख्याका विषय विस्तारसे समझनेकी आवश्यकता प्रतीत हो तो उसे **'साधक-संजीवनी'** टीका देखनी चाहिये।

गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
✆ +91-9235400242 / 244 +91-9235400242
e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
website : www.gitapress.org/gitapressbookshop.in—सूची-पत्र तथा पुस्तकोंका विवरण पढ़ें एवं गीताप्रेसकी खुदरा पुस्तकें Online डाकसे/कूरियरसे मँगवायें।
gitapress_since1923 gitapress_since1923 @GitaPress @gitapress1923